हिमाचली इष्टदेव एवं कुल देवता

(देवगाथा – शोध संकलन)

(संदर्भः धारावाला देव, नारसिंह बजीर, दानो, गुग्गा, बाड़ा देव, बाडूबाड़ा, मंढोड़, बीजू देव, गण देव, माहूनाग, जरवौली देवी, बणिया देवी एवं बातलेश्वर शिवालय)

अमर देव आंगिरस

हिमाचली इष्टदेव एवं कुल देवता

(देवगाथा – शोध संकलन)

(संदर्भः धारावाला देव, नारसिंह बजीर, दानो, गुग्गा, बाड़ा देव, बाडूबाड़ा, मंढोड़, बीजू देव, गण देव, माहूनाग, जरवौली देवी, बणिया देवी एवं बातलेश्वर शिवालय)

अमर देव आंगिरस

समर्पण

परमपूज्य स्व॰ नानाश्री पण्डित जीव राम पाठक बातल

की स्मृति में श्रद्धापूर्वक भेंट

जिनकी छत्रछाया में बचपन बीता !

संस्करण - 2018
ISBN : 978-93-5291-400-5

प्रकाशक :
दयावन्ती आंगिरस
अंगिरा अध्ययन संस्थान
समीप उद्यान विभाग, दाड़लाघाट (अर्की)
सोलन (हि. प्र.) 171102
दूरभाष : 01796 - 248153
मोबाइल : 094181 - 65573, 098051 - 16573
E-mail : amardevangiras@gmail.com

Himachali Ishta Dev avam Kul Devata - (Devgatha-Shodh Sankalan)
Sanshodhit

आवरण :
इष्ट देवियां एवं देव - भद्रकाली, जालपा, भैरव, गौरी

मुद्रक :
डिज़ाइन इंडिया, पावर हाउस, न्यू टुटू, शिमला - 171011
मो.93180 - 17070, 94180 - 17070

मूल्य - रु.325/-

सांस्कृतिक – संरक्षण की आवश्यकता

आज के भौतिक वादी युग में अध्यात्म और मानवता के मूल्य लुप्त होते जा रहे हैं। पश्चिम का अंधानुकरण भारत की सामाजिक संरचना को अपनी जड़ों, परम्पराओं को काटकर हिंसा, हत्या और स्वार्थपरता की अपसंस्कृति को बढ़ावा दे रहा है। आज शिक्षा का स्वरूप अपनी जमीन और संस्कृति से कट चुका हैं। युवा – वर्ग 'खाओ – पीयो और मौज मनाओ' की संस्कृति को अपना रहा है। पश्चिम के भोगवादी – उत्सव वैलेन्टाईन डे, बर्थ डे केक पार्टियां, कैबरे डान्स और कर्णकटु वाद्य – संगीत नई पीढ़ी के संस्कारों में पसर चुके हैं।

संचार – माध्यमों ने तो अश्लीलता की सभी हदें पार कर दी हैं। इन्हें पैसा कमाने के लिए अश्लील से अश्लील सामग्री और भौंडे नग्न प्रदर्शन दिखाने में कोई लज्जा या उत्तर दायित्व की भावना महसूस नहीं होती। बस पैसे की दौड़ है। टी. वी. चैनलों पर रियल्टी शो के नाम पर नग्नता, फूहड़ हास्य और अनैतिकता परोसी जा रही है। बिग – बॉस, सच का सामना इस जंगल में मुझे बचाओ जैसे अश्लील रियल्टी शो समाज को जंगली होने की वकालत कर रहें हैं। आज अत्याचारी मध्यकालीन शासकों को नायक बनाया जा रहा है और राष्ट्रप्रेमी भारतीय शासकों के चरित्रों को तोड़ – मरोड़ कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामाजिक वातावरण इतना क्रूर और हिंसक बन रहा है कि वहां मानवीय सम्बन्ध पारिवारिक रिश्ते, भाईचारा, परोपकार की भावना और देश – प्रेम की भावना नई पीढ़ी से नदारद होती दीख रही है। गांव शहरों में नित्य लूट – घसूट, घोटाले बलात्कार की घटनाएं बढ़ रही है।

यह सब अपनी संस्कृति और धार्मिक विश्वासों (दैवीय भय) की उपेक्षा के कारण हो रहा है। यह सही है कि इक्कीसवीं सदी में वैज्ञानिक सोच पर जीवन सुविधा सम्पन्न हुआ है, किन्तु मानसिक शान्ति, सामाजिक मातृभाव, परोपकार आदि भावनाएं आहत हुई हैं। इसके लिए आवश्यक हैं कि अपने इतिहास एवं देवी – देवताओं की महानता की जानकारी नई पीढ़ी

को मिले। देवताओं का पद उन्हीं महान आत्माओं को मिला है जिन्होंने भारतीय समाज – संस्कृति और राष्ट्र को जीवित रखा है। उन महान आत्माओं से जुड़ी दन्त कथाएं, जनश्रुतियां और ढकोसले, जनसाधारण में सादगी, भाईचारा और सात्विक गुणों को पैदा करने में समर्थ हुए हैं अत: आवश्यक है कि आस्थावान भक्त – श्रद्धालु देवताओं के वैज्ञानिक पक्ष को भी समझे। इसके अतिरिक्त जीने का कोई अन्य रास्ता ऐसा सत्यम, शिवम्, सुन्दरम नहीं हैं। श्री अमर देव आंगिरस का लेख – संकलन इस क्षेत्र के सुविख्यात देवताओं की महान – गाथाओं का शोधपूर्ण बखान है। लेखक ने बरसों के श्रम से तथ्यों को सहेज़ कर रखा है – ये सब इन देवताओं की वंशावलियों, टिप्पणियों और जनश्रुतियों के वर्णन से पता चलता है।

इस प्रकार की देव – कथाओं के संकलन की बहुत आवश्यकता थी। सोलन एक नया जिला बनने के कारण इसमें कुछ अन्य जिलों की रियासतें भी समाहित हुई, अत: इस क्षेत्र पर कोई विशेष सांस्कृतिक शोध नहीं हुआ है। छिट – पुट सामग्री बल्कि कहें कि बहुत कम सामग्री सोलन के लोक देवताओं पर उपलब्ध होती है। सोलन जिला की संस्कृति पर लिखने वाले कम लेखक हैं जो ऊंगली पर गिनेजा सकते हैं। श्री आंगिरस जी बरसों से हिमाचली संस्कृति पर अपने स्तर पर शोध कार्य कर रहें हैं।

श्री आंगिरस जी ने सोलन क्षेत्र पर ऐतिहासिक शोध पर यह पुस्तक निकालकर महत् कार्य किया हैं। इस सुन्दर और श्रमसाध्य कार्य के लिए मैं इन्हें शुभ कामनाएं देता हूँ। इस संस्कृति पुस्तक श्रृंखला में भविष्य में भी इनसे शोध लेखन की अपेक्षाएं हैं।

आशा है हिमाचल प्रदेश के संस्कृत – प्रेमियों के लिए यह संदर्भ की आवश्यकता पूरी करेगी और पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाएगी।

डॉ. जगदीश शर्मा
उपाध्यक्ष एवं पूर्व सचिव
कला संस्कृति भाषा अकादमी, हि. प्र.

लुप्त देव-संदर्भों का मौलिक उद्‌घाटन

श्री अमर देव आंगिरस द्वारा लिखित 'सोलन जनपद की लोक देव-परम्परा' पुस्तक का विहंगावलोकन कर अपार प्रसन्नता हुई। लेखक अथक अध्यवसायी, साहित्य के प्रति अनुरागपूर्ण समर्पण से सम्पन्न तथा क्षेत्रीय संस्कृति के उद्धार की उत्कट इच्छा से ओत प्रोत हैं। हिमाचल की विशाल एवं अमूल्य सांस्कृतिक सम्पदा ऐसे ही कर्मठ मर्मज्ञ एवं उत्साही जनों को आशा भरी दृष्टि से देख रही है। इस संस्कृति के उधड़ते अंकुरों को पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होने के लिए किसी रविमण्डल की अपेक्षा अभी भी बनी हुई है। प्रस्तुत कृति इसी अपेक्षा की पूर्ति का एक स्वागत योग्य प्रयास है।

हिमाचल प्रदेश को 'देव भूमि' जो कहा जाता है वह उचित ही है। कालिदास ने इसे देवतात्मा, देवभूमि आदि सारगर्भित शब्दों से विशेषित किया, वह साभिप्राय है। यहां के कण कण में देवता का निवास है। यहां के समाज एवं प्रकृति में देवत्व प्रतिफलित है। अतः यहां की संस्कृति में देवों की दिव्यता, पावनता तथा निर्मलता का होना संगत और स्वाभाविक है। और इन्हीं शाश्वत मूल्यों को हिमाचल युगों से विश्वसमाज के लिए देता रहा है तथा आज भी देने में समर्थ है। भौतिक भोग साधनों के उत्कर्ष तथा मानवमूल्यों के अपकर्ष से आज जो अपसंस्कृति पनप रही है उसके दुष्परिणाम अनेक संकटों के रुप में संसार के सामने हैं। इस पतन को यदि कहीं रोकना होगा तो इस प्रदेश की देव संस्कृति से प्रेरणा लेनी ही होगी तभी मानवता की गरिमा जीवित रह सकेगी। इस संदर्भ में यहां के देव गणों का अनुशीलन अन्वेषण तथा समाज के सामने प्रस्तुतीकरण आज की महती आवश्यकता है। हिमाचली समाज को देवमण्डल ने एक सूत्रता, नैतिकता, उदारता, सहयोगिता, सत्यप्रियता, धर्मभीरुता, श्रद्धालुता आदि अनके गुणों से समृद्धि प्रदान की है। इन्हीं गुणों की भास्वर किरणें शेष समाज को भी वितरित करने के लिए यहां की देवसंस्कृति का गम्भीर अध्ययन एवं प्रचार आवश्यक है।

इस रचना के लेखक ने इसी प्रयोजन की पूर्ति की है। विस्मृति के तामस-गर्त में विलोप होते जा रहे देवसंदर्भों को पुनः उद्‌घाटित, परिभाषित और परिपुष्ट करके लेखक ने समय की एक भारी आवश्यकता की पूर्ति की है जिस के लिए वह कृतज्ञ समाज के अभिनन्दन का पात्र है। मेरी अनन्त शुभकामनाएं!

प्रो. केशव राम शर्मा
राष्ट्रपति-पुरस्कृत एवं वरिष्ठ साहित्यकार

अनुक्रम

परिशिष्ट

1

धरातल पर देवता

प्रस्तुत पुस्तक में हिमाचल प्रदेश के प्रख्यात लोक देवताओं की वंशावालियों पर आधारित देव–गाथाएँ हैं जिनका प्रतिपादन एवं प्रामाणिकता ऐतिहासिक दस्तावेजों–गजेटियरों, शिलालेखों, मन्दिरों की पट्टिकाओं, पांडुलिपियों एवं विद्वानों की पुस्तकों पर आधारित हैं। देवस्थानों की यात्राएँ भी इसमें सहायक बनी हैं। ये देव सर्वसाधारण जन के इष्टदेवता तथा कुलदेवता हैं जिनकी पूजा अर्चना प्रत्येक पर्व एवं शुभ अवसरों पर की जाती है। किन्तु विडंबना है कि आज इनकी अल्प जानकारी ही जन साधारण को उपलब्ध है।

धारावाला देव (भोज परमार का वंशज) धारानगरी, उज्जैन का मध्यकालीन योद्धा था, जिसकी वीरता के किस्से हिमाचल ही नहीं, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, जम्मू आदि प्रदेशों में देव–गाथाओं के रूप में सुनाए जाते हैं। ये योद्धा गुग्गा चौहान का समकालीन था, अतः इनकी गाथा में इनके सहायक सेनापति वजीर नाहरसिंह की स्तुतियाँ भी मिलती हैं। कुरगण मंढोड़ सिरमौरी टीका था जो वहाँ गिरि नदी की बाढ़ अथवा राजवंश के खत्म होने पर मंढोड़घाट आया था। बाड़ूबाड़ा देव पराक्रमी वीरसेन था जो बंगाल से मध्यकाल में सुकेत में आया। बीजूदेव कोटगुरु का वीर एवं सन्त राजकुमार था जो देवथल गंभर पुल में आकर बसा। चंज्याला देव, राणा अजयपाल है जो वीरसेन का प्रमुख सेनापति था तथा बड़ा बंगाहल का शासक था।

इनके अतिरिक्त पौराणिक देव बाड़ादेव, सहस्त्रबाहु (दानोदेव) हरसंग, गणदेव (शिवरुद्र गण वीरभद्र) हैं जिनके देवस्थान सदियों से यहाँ की जनता की आस्था के केन्द्र बने हैं। समस्त भारतवर्ष की तरह यहाँ भी नागपूजा की परम्परा है तथा माहूनाग के रथ–चक्र हैं।

इन सभी देवों के रथ–चक्र तथा पालकियाँ पर्व–त्यौहारों पर नृत्य करती गाँव–गाँव जात्रा (यात्रा) करती हैं। लोग इनके सम्मुख मनौतियाँ करते हैं तथा ये देवता यहाँ के लोगों के 'कुलदेवता ' एवं 'इष्टदेवता' हैं। ये लोक देवता अधिकांश 'पितृदेवता' हैं।

जिज्ञासु एवं आस्थावान पाठकों के स्नेह एवं मांग के फलस्वरुप पूर्व पुस्तक ''देवता की उत्पति एवं लोक विश्वास'' के पसन्द करने के कारण प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का साहस हुआ है। बरसों के अध्ययन एवं शोध के पश्चात ये वृतान्त प्रस्तुत हो सके हैं। बाघल रियासत के प्राचीन मन्दिर – बणिया देवी एवं जखौली देवी पर अगाध आस्था के दृष्टिगत संग्रह में इन पर प्रामाणिक उपलब्ध जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार शिव गुफा लूटरु– मूटरु जनता की भक्ति एवं श्रद्धा के केन्द्र बिन्दू हैं। प्राचीन लक्ष्मी नारायण मन्दिर अर्की और बड़े गांव बातल का शिवालय बाघल के प्रारम्भिक शासकों द्वारा निर्मित हैं।

लिखने की प्रेरणा

धार्मिक विषयों विशेषकर देवताओं की ओर मेरी बचपन से रुचि रही है। मेरी मां बहुत धर्मनिष्ठ और हिन्दू धर्म की ओर दृढ़ प्रतिज्ञ थीं। कर्मकाण्डी एवं ज्योतिषी परिवार से सम्बन्ध रखने के कारण हिन्दू–मान्यताओं एवं व्रत–उपवास में उनकी अगाध आस्था रही। मेरी तीन वर्ष की आयु होते ही मेरे पिता का निधन हो गया, अतः मेरे ननिहाल वालों ने थोड़ी–बहुत मदद की। माताजी ने विकट परिस्थितियों में हम तीन बच्चों का लालन पालन किया। बड़े भाई घर में धार्मिक वातावरण मिलने के कारण बचपन से साधु संतों के डेरों में जाने लगे थे और बाल्यकाल में ही एक नाथ साधु योगी के साथ भाग गए। दूसरे भाई को ननिहाल में बुला लिया गया। केवल मैं किशोरावस्था तक मां के पास रहकर किसी तरह मैट्रिक कर सका। ईश्वर की कृपा रही कि पढ़ने में अपनी कक्षा में मैं पहले दो–तीन

छात्रों में स्थान बनाता रहा और प्राईवेट तौर पर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सका।

आश्चर्य की बात यह थी कि माता जी यद्यपि अनपढ़ थीं, फिर भी उनके विष्णु सहस्रनाम, गीता के अनेक श्लोक, समस्त देवताओं की स्तुतियां और पौराणिक कथाएं जवानी याद थीं, इसका कारण मेरे नाना जी तथा उनके अहाते के विद्वान परिवार जनों का इन श्लोकों आदि का ऊँचे सस्वर में पूजा करना तथा दैनिक गतिविधियों में गायन–वाचन था। माताजी बचपन से ही एकान्त प्रिय और स्वपाकी थीं। पूजा–पाठ, व्रत उपवास और तिथि–वार में वे धार्मिक गतिविधियों में नब्बे वर्ष तक की आयु तक निमग्न रहीं। दया–धर्म और दान में उनकी इतनी आस्था थीं कि स्वयं भूखी रह जाती थीं। तुलसी के अनेक श्लोक वे प्रायः उच्चरित करती थीं – **"दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्राण।"** ऐसा कोई देवी–देवता नहीं था जिसे वे प्रणाम न करती हों। घर में सभी ठाकुर शिवजी, गणेश, दुर्गा, विष्णु, लड्डू–गोपाल, कार्तिकेय आदि सभी थे जिनकी घण्टों तक नवधा–भक्ति के अनुरुप विधिवत पूजा करती थीं और रात्रि को एक समय ही भोजन करती थीं। गौ सेवा और गौचारण, उनका नित्य कर्म था। गांव की बांवड़ियों, नदी, पीपल, बड़, सूर्य, चांद सभी को प्रणाम करती थीं और मुझे दंडवत प्रणाम करने को कहती थीं। जीव हिंसा के बहुत विरुद्ध थीं। कुत्तों–बिल्लों को डंडा मारने वालों से गांव के अनेक लोगों से उनका प्राय झगड़ा रहता था। कथा श्रवण, संकीर्तन के लिए दूर–दूर चली जाती थीं। यही नही शैव–वैष्णव देवताओं ही नहीं, लोक देवताओं धारावाला देव, बीजूदेव आदि को भी इसी प्रकार पूजती थीं। लेकिन यह पूजा विधान इतना अधिक कठोर हो चला था कि मुझे इस वातावरण से दूरी बनाने की इच्छा होती थी। लेकिन प्रातः स्कूल जाने से पहले नंगे पावं शिव मंदिर में पानी चढ़ाने जाना ही पड़ता था। मुझे याद आया जब अर्की गौशाला में रामलीला और रासलीला होती थी तो

वे मुझे पकड़कर और उठाकर साथ ले जाती थीं। वहां कुछ न कुछ दान जरूर देतीं।

रियासती काल में मेरे गांव–बातल का पहाड़ी रियासतों में विद्वता में विशेष स्थान रहा है। गांव का वातावरण जटिल कर्मकाण्ड, ज्योतिष और समस्त हिन्दू सांस्कृतिक गतिविधियों का रहा है जिसका कारण अर्की नरेशों द्वारा यहां विद्वान ब्राह्मणों का बसाया जाना रहा है। अन्य विद्वानों के साथ मेरे दादा पं. शिवराम जी भी राज दरबार में शास्त्रार्थ करते थे। गांव के इस समृद्ध सांस्कृतिक वातावरण का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

उच्च शिक्षा के पश्चात स्वाभाविक रुप से मेरी जिज्ञासा इन देवताओं की महिमा एवं इनके मानव–चरित्रों को समझने की ओर उन्मुख हुई। मानवीय धरातल पर देवताओं को समझने के प्रयास में सांस्कृतिक–लेखन की शुरुआत हुई जो आज संस्कृति के अनेक पहलुओं को पुस्तकाकार के रुप में प्रस्तुत हो सकी हैं। देवता क्या है और कितने है ? इसका उत्तर मेरी माता जी प्रायः गीता के इस श्लोक से दिया करती थीं–

"आकाश पतितम् तोयं यथा गच्छति सागरम
सर्वदेवः नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति।"

जैसे आकाश से गिरी हुई प्रत्येक बूंद सागर में मिल जाती है उसी प्रकार किसी भी देवता को किया हुआ प्रणाम ईश्वर (केशव) को ही मिल जाता है।

वास्तव में आस्था और विश्वास से ही मानव–मानव में भेद खत्म होने की प्रवृति उत्पन्न हुई है और विश्व एक इकाई के रुप में अग्रसर हो रहा है।

हिन्दुओं की जीवन शैली तैतींस कोटि (प्रकार) देवी देवताओं की परिकल्पना तथा मान्यता हैं। अनास्थावान विद्वान एवं दार्शनिक भी

किसी न किसी रूप में अदृश्य महाशक्ति को मानते हैं, जो रहस्यमय होते हुए भी प्रकृति, जीव तथा अन्तरिक्ष लोकों को संचालित कर रही है। उसे जानने के लिए मनुष्य अपनी बुद्धि–क्षमता के अनुसार प्राकृतिक उपादानों को ही जीव–जगत के अस्तित्व और परिवर्तन को सिद्ध करता रहता है। किन्तु सभी आविष्कार उस सत्ता के आगे असमर्थ, पंगु तथा अव्यस्थित से लगते हैं।

सामाजिक व्यवस्था में देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यदि अंधविश्वास, तर्कहीन कर्मकाण्ड और रूढ़ियों को हटा दिया जाये तो आज की वैज्ञानिक उन्नति के शिखर तक पहुँचने के लिए धार्मिक और सामाजिक–व्यवस्था को ही कारण माना जा सकता है।

धर्म–आधारित व्यवस्था ने समाज में एकता, भाईचारा, पाप का भय तथा परोपकार की भावना को विकसित किया हैं। अतः माना जा सकता है कि जो भी प्राकृतिक शक्तियाँ हमें जीवन प्रदान करती हैं और कुछ न कुछ देती हैं, वे ही साकार ईश्वर या देवता हैं। वैसे भी प्रकृति में क्रिया की प्रतिक्रिया, कर्मों का फल स्वयं सिद्ध है। अतः जिन वीर पुरूषों ने समाज को जीने का रास्ता और सामाजिक–सुरक्षा प्रदान की, वे हमारे देवता बन गये हैं। उनके स्मरण और वन्दन से हम शान्ति, सुख और जीने का उल्लास प्राप्त करते हैं। उनके नाम पर यज्ञ होते हैं जिससे समाज में भाई चारा कायम है।

लोक देवताओं पर जानकारी के लिए मैं समस्त देव स्थानों में घूमा, वयोवृद्ध विद्वानों, पुजारियों तथा श्रद्धालुओं से मिलता रहा हूं। छोटी काशी बातल के विद्वानों पं. उमादत्त पाठक, पं. सीताराम, पं. जगत राम, स्व. बिहारू देवी बाई जी शर्मा, पं. परस राम शमेली गांव एवं सागर राम गौतम ग्राम डोरी दाड़ला आदि ने मौखिक रूप से विभिन्न संदर्भों में चर्चाऐं की एवं प्रेरणा प्रदान की उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

देवगाथाओं के प्रकाशन के पीछे मेरा यह उद्देश्य रहा है कि प्रदेश से लुप्त हो रही समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित एवं संकलित कर नई पीढ़ी को समर्पित कर सकूँ। वर्तमान समय में देव मन्दिरों तथा पुजारियों के लिए भी ये गााथाएँ अनुपलब्ध ही हैं। इसका कारण सहस्रों वर्षों की दासता, रजवाड़ों की विवशता, अज्ञानता तथा आक्रमणकारियों द्वारा दस्तावेजों, मन्दिरों आदि को नष्ट–भ्रष्ट करना रहा है। अपने प्रकार की यह प्रथम पुस्तक मानी जा सकती है। अनुसंधित्सुओं एवं शोधार्थियों के लिए तथ्यों पर आधारित यह पुस्तक संदर्भ दस्तावेज के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकेगी– ऐसा विश्वास है।

अंत में मैं परम विद्वान परमादरणीय प्रो0 केशव राम शर्मा दर्शनाचार्य, राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त वरिष्ठ साहित्यकार एवं परमादरणीय जगदीश चन्द शर्मा, पूर्व सचिव हि. प्र. अकादमी का हार्दिक धन्यवादी हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरणा स्वरुप कुछ शब्द प्रदान किए हैं। आयुष्मान मनोज, बेटी अनुपमा वशिष्ठ एवं अलकेश्वरी ने टाईप एवं सामग्री संकलन में सहयोग दिया है उसके लिए वे अभिनंदन के पात्र हैं।

सुन्दर गैट–अप एवं कलेवर के लिए आभी प्रकाशन, शिमला के श्री जगदीश चन्द्र हरनोट का धन्यवाद करना मैं अपना नैतिक कर्तव्य समझता हूँ। आशा है मेरा यह प्रयास पाठकों को पसन्द आएगा तथा वे अपनी संस्कृति से परिचित हो सकेंगे। अंत में–

"एको देवाः सर्व भूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास साक्षीः चेता केवलो निर्गुणश्च ।"

एवं

" एको देवः बहुधा सद्विप्रा वदन्ति "

देवता एक ही है, विद्वान उसे कई नामों से पुकारते हैं।

जय भद्रकालि माता ! जय बातलेश्वर शिव !!

अमरदेव आंगिरस

2

गोत्र, कुल एवं कुल देवता - एक विवेचन

भारत का प्रथम वंश–सूर्य वंश

आज की सभ्यता हमारे पूर्वजों की देन है। प्राचीन साहित्य में "ऋषि–कुल" एंव "गोत्र" की चर्चा मिलती है जिससे गोत्रों एवं कुलों की महत्ता का पता चलता है। पुराणों के अनुसार सृष्टि में सबसे पहले ब्रह्मा जी प्रकट हुए। उनके मानस पुत्र मरीचि हुए मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य, सूर्य से मनु, मनु से इक्ष्वाकु, आदि प्रख्यात सूर्यवंशी राजा हुए जो बाद में क्षत्रिय कहलाए। इसी वंश में माधान्ता, सागर, रोहिताश्व, अंशुमान तथा भगीरथ हुए। पश्चात दीर्घबाहु, अज, दशरथ और दशरथ से राम हुए। ये वंश सूर्यवंश कहलाया।

चन्द्रवंश अथवा भौम वंश

दूसरा वंश चन्द्रवंश था। कश्यप से अदिति के गर्भ से सूर्य का जन्म हुआ। नरसिंह पुराण के अनुसार सूर्य से संज्ञा के गर्म से मनु की उत्पति हुई। मनु के द्वारा सुरूपा के गर्भ से सोम और सोम के द्वारा रोहिणी के गर्भ से ब्रह्मा का जन्म हुआ। बुध के द्वारा इला के गर्भ से राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए। पुरूरवा से आयु, आयु के नहुष, नहुष के ययाति और ययादि शर्मिष्ठा से राजा पुरू का जन्म हुआ। इसी पुरु वंश में दुष्यन्त–शकुन्तला के राजा भरत हुए जिनके नाम पर 'भारतवर्ष' एक देश का नाम पड़ा। ययाति की दो पत्नियां थी। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। इन दानों पत्नियों से पांच पुत्र पैदा हुए। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को

जन्म दिया और शर्मिष्ठा ने दुह्यु, अनु और पुरू तीन पुत्रों को जन्म दिया। इनमें से यदु और पुरू ये दो ही चन्द्रवंश का विस्तार करने वाले हुए।

भरत के वंश में प्रसर और शन्तनु प्रतापी राजा हुए। शन्तनु से योजनगंधा के विचित्रवीर्य हुए। विचित्रवीर्य के अम्बिका के गर्भ से पांडु का जन्म हुआ। पाण्डु से कुन्ती देवी के अर्जुन, अर्जुन से सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु अभिमन्यु से उत्तरा के गर्भ से परीक्षित राजा हुए। परीक्षित के मातृवती से जन्मेजय इसी श्रृंखला में शतानीक, सहस्रानिक, उदयन, नरवाहन, क्षेमक राजा हुए। क्षेमक पांडव वंश का अन्तिम राजा था।

चन्द्रवंश के दो वंश चंद्रवंश और तुर्वसु विख्यात हुए। इन वंशों की अनेक शाखाएं बन गईं किन्तु प्रारम्भ वैदिक परम्परा सृष्टि में सूर्यवंश और चन्द्रवंश अस्तित्व में आए। पुराण–साहित्य वंशावलियों के आधार पर रचा गया है। वंश को वर्णाश्रम के अर्न्तगत बहुत महत्व दिया जाता था। वर्णाश्रम का उल्लेख प्रारम्भ में ही ऋग्वेद के 'पुरूष–सूक्त' में विशद रूप से मिलता है। चारों वर्ण क्षमता एवं कर्म के अनुसार अपना–अपना कार्य बिना भेद–भाव किया करते थे।

गोत्र

'गोत्र' का अभिप्रायः वंश से है। जिस ऋषि से जो पैदा हुआ, उसका उसी ऋषि के नाम पर गोत्र बना। सप्तऋषियों विश्वामित्र, वशिष्ठ, कश्यप, यमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि और ऋषि अगस्त्य को उनके वंशज उनके नाम से 'गोत्र' स्वीकार करते है। अतः कहा जाता है कि सभी भारतीय ऋषियों की सन्तान हैं। वैदिक काल से पौराणिक काल तक (ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी–बुद्ध से पूर्व) ये ऋषि ब्राह्मण या क्षत्रिय कर्म एवं सामाजिक व्यवहार के कारण जाने जाते थे।

राजपूत वंश

किसी ऋषि का वंश ज्यों–ज्यों विस्तार पाता था तो वह 'गण' अथवा 'समूह' के रूप में एक कुल का स्वरूप लेता था। एक ऋषि की सन्ताने कई 'गणों' में विभक्त हो जाती थीं। ये 'गण' मिलकर 'जन' या 'जनपद' के रूप में विकसित हो जाते थे। विभिन्न गणों अथवा जनपदों को मिलाकर एक 'राष्ट्र' बन जाता था। प्राचीन पुराण साहित्य, रामायण, महाभारत में इन गणों की विस्तृत व्याख्या मिलती है। पुराणों में इन गणों को 'कुल' के रूप में भी जाना जाता है। विश्वामित्र का कुल हैहेय वंश वशिष्ठ का वंश, यदु, तुर्वसु, पुरूवंश आदि असंख्य वंश, वंशावलियों के रूप में पुराणों में वर्णित हैं।

'गोत्र' को 'वंश' कहा जा सकता है, 'कुल' नहीं। साधारणतया गोत्र को कुल कहा जाता है, जबकि कुल लोगों का विभिन्न गणों का समूह है। बेशक वे रक्त की समानता के कारण एक ही वंश के हों। एक कुल के लोग समान धार्मिक अनुष्ठान और समान देवी–देवता की पूजा करते हैं। एक वंश के लोग कुलदेवता को बदल भी सकते है। इसका कारण वंश का कहीं अन्य पलायन कर बसना और अन्य कुल के सम्पर्क के कारण कुल देवता को आराध्य मानना है। ऐसा स्वाभाविक रूप से इतिहास में होता रहा है। राजपूत वंश एवं कुल विभिन्न विदेशी जातियों के भारत में बसने और उनसे वैवाहिक सम्बन्धों के कारण नई उपजातियों के रूप में परिवर्तित होने के कारण यहां के देवी–देवताओं को अपना आराध्य मानने को स्वाभाविक रूप से मजबूर हुए। यही कारण है कि भारत की उच्च जातियों ब्राह्मणों–क्षत्रियों के गोत्र निम्न जातियों ने अपना लिए। कश्यप की सन्तानें क्षत्रिय भी हो सकती है और निम्नवर्ग की भी। जातियों का सम्मिश्रण, यवनों, ईरानियों, शकों, हूणों, गुर्जरों आदि के यहां की जातियों में विलीन हो जाने के कारण यहां क्षत्रिय जाति जैसे लुप्त प्रायः हो गई और ईसा की तीसरी शती पूर्व से 11वीं शती तक क्षत्रिय

जाति जब लुप्त प्रायः हो गई तो ब्राह्मण राजपुरोहितों ने विदेशियों के आक्रमणों का सामना करने के लिए कुछ राज्यों के शूरवीर युवा राजकुमारों को माऊंट–आबू राजस्थान में बहुत बड़े यज्ञ की व्यवस्था करके एवं शुद्धिकरण करके 'राजपूत' नाम दिया। इन्हें अग्निकुण्ड से पवित्र कर 'राजपूत' नाम दिया गया। ये प्रमुख चार कुलों के प्रमुख थे– परमार, प्रतिहार (परिहार) सोलंकी और चौहान। कालांतर में इनसे भी कई राजपूत जातियां अस्तित्व में आईं।

राजपूतों के चार कुल

ये चार 'राजकुल' अथवा 'राजपूत' मूल रूप से कौन थे, इस पर विभिन्न मत है। विदेशियों द्वारा पूर्वाग्रह से इतिहास लेखन के कारण समूचे इतिहास को पूर्वाग्रह से तोड़–मरोड़ कर सिद्ध किया गया है। उनके अनुसार ये राजपूत विदेशी विजेता राजाओं की सन्तान थे जो यहां की संस्कृति में मिल चुके थे, किन्तु समाज में उनकी मान्यता क्षत्रियों के रूप में नहीं थी, अतः इन्हें शुद्ध करने के लिए यज्ञ किया गया था। इसकी वास्तविक तिथि का विवरण तो नहीं मिलता, किन्तु यह घटना 11वीं शती के प्रारम्भ की हो सकती है जब तुर्कों के आक्रमण निरन्तर उत्तरी भारत पर हो रहे थे। इन चार राजपूत जातियों के नाम शत्रु को परास्त करने के अर्थ में रखे गए थे। उदाहरणतया 'पामरों' का 'अरि' (पंवार अर्थात) परमार, परिहार अर्थात शत्रुओं के अत्याचारों का परिहार करना चवहान (चौहान) चारों दिशाओं में विहार करना, रक्षा करना, सोलंकी अर्थात निष्कलंक राज करने वाला।

किन्तु समस्या यह थी कि इनका कुल कौन सा होगा? पौराणिक काल के दस गणराज्य जो एक ही कुल से सम्बन्धित थे, यानि एक पिता ययाति और उसकी दो पत्नियों देवयानी और शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुए थे वे यदु, तुर्वशु, अणु और पुरू कुल या गण थे। ये उत्तरी भारत के गण थे और दक्षिण–पूर्वी भारत के गण–अंग, बंग, कलिंग, पुण्ड्र और समूह थे। ये राजा बलि के पुत्र कहे जाते थे। इनके

अनेक विभाजन हो गए थे यानी उपशाखांए बन गई थीं। इन्हें ये चार राजपूत अपना कुल–पुरूष या कुल देवता तो मान ही नहीं सकते थे।

अतः इन्हें अधिकारी विद्वान ब्राह्मणों ने वशिष्ठ के नाम पर यज्ञ के पश्चात इन्हें 'अग्निकुल' का नाम दिया। इन चार के अतिरिक्त शेष भारतीय राजा अपने को चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी ही कहते रहे। इस तथ्य का प्रमाण हिमाचली क्षेत्रों में रियासत स्थापित करने वाले राजपूत योद्धाओं द्वारा अपने को चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी, यदुवंशी, पाण्डववंशी मानने से मिलता है।

यह सर्वसिद्ध तथ्य है कि आबू में 'राजपुत्र' युद्धवीरों को वैदिक यज्ञ–अनुष्ठान से शुद्ध करने और उन्हें वास्तविक क्षत्रिय–पुत्र मनवाने के लिए वर्णाश्रम से हटकर इन्हें नई जाति 'राजवंश' का नाम दिया गया था। इतिहासकारों के अनुसार वर्णाश्रम विदेशी जातियों के 'वैवाहिक विलयन' से ग्यारहवीं सदी तक समाप्त प्रायः था। भारतीय सैनिकों में क्षत्रिय, ब्राह्मण, विदेशी मूल के योद्धा सैनिक सभी थे। इतिहासकार बी. एम. राव ने कहा है कि वशिष्ठ वंश के योद्धा, जो पहले ब्राह्मण थे, किन्तु बौद्ध बन गए थे, उन्हें पवित्र अग्नि कुण्ड से पैदा किया गया। डॉ. दशरथ ओझा ने 'ब्राह्मक्षत्र', की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो शासक ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनों का गुण धारण करते थे उनके लिए 'ब्राह्मण' कहा जाता था।

डॉ. ओझा के अनुसार 'परमार' राजपूत प्रारम्भ में ब्राह्मण थे, किन्तु धर्म की रक्षार्थ क्षत्रिय बन गए। प्रतिहार भी पहले ब्राह्मण थे, किन्तु धर्म की रक्षार्थ क्षत्रिय बन गए। चहमानों (चौहानों) का पूर्वज सामन्त राजस्थान के 'बिजोलिया' लेख के अनुसार विप्र (ब्राह्मण) था। चालुक्य भी अभिलेखों के अनुसार विप्र ब्राह्मण के वंशज थे। यज्ञ के अग्निकुण्ड से तो उनकी शुद्धि की गई। इतिहासकार कुक का तर्क था कि इन अजातीय योद्धाओं–विदेशी और देशी शासकों को अग्निकुण्ड से पवित्र कर राजपूत जाति में सम्मिलित किया गया था।

निम्न कुलों का उदभव

राजपूत जाति के योद्धाओं को तुर्कों–मुगलों से युद्ध करने पड़े तथा पराजय के पश्चात अपने क्षेत्र छोड़ने पड़े। कुछ को विदेशियों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। साम्यवादी इतिहासकारों का मानना है कि पहली शती ईस्वी के आसपास जब शकों–कुषाणों ने मगध, सिन्ध, पंजाब, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों को जीता तो सहस्त्रों सैनिको के साथ लोगों को भी मार दिया। जिन सैनिकों ने आत्मसमर्पण किया उन्हें निम्न कार्य करने पर मजबूर किया जैसे–मल उठाना, सफाई करना, पशु का वध करना, चमड़ा उतारना, खेती बाड़ी और समस्त सेवा के कार्य करवाना। परिणामस्वरूप नई निम्न जातियां अस्तित्व में आई। भंगी, चर्मकार, लुहार, तेली आदि जिन्हें अस्पृश्य बना दिया गया। पण्डितों–पुराहितों ने भी इनसे दूरी बना ली और विदेशियों के तो वे 'दास' ही थे। किन्तु इन क्षत्रिय–राजपूत वंशजों ने अपने गोत्र, कुल आदि को ऋषियों या अपने पूर्वजों से सम्बन्धित ही माना। यही कारण है कि वर्तमान काल में भी निम्न जातियां अपने को कुल, गोत्र के लिए ऋषियों, कश्यप, कौशल, कौशिक, चन्देल, भाटिया, भारद्वाज आदि नामों से अपने गोत्र बताती हैं। असंख्य सैनिक जो मारे गए उनकी स्त्रियों से इन विदेशियों ने विवाह किए जिससे इनसे उत्पन्न संतानें नई जातियों के रूप में अस्तित्व में आई।

मुगलों के शासन तक क्षत्रिय समाज छतीस कुलों में बंटा जो बाद में बासठ शाखाओं में विभक्त मिलता है। ये हैं–

दस सूर्यवंशी, 10 चन्द्रवंशी 12 ऋषि और 4 अग्निकुल 1 हिन्दी साहित्य के राजपूत कालीन (पृथ्वीराज चौहान) महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में इनका उल्लेख एक पद में मिलता है।

"चार हुतासन सों मये, कुल छत्तीस प्रमाण
भौमवंश से धाकरे टांक नाग प्रमाण
चौहान चौबीस बंटी, कुल बासठ प्रमाण।"

इन अग्निवंशी राजपूतों ने अपने कुल का नाम इन चार नये कुलों के नाम पर ही लिखा। यद्यपि ये कुल आगे चलकर अनेक उपकुलों, शाखाओं में परिवर्तित होते गए। ये प्रमुख सात विभिन्न कुलों में उल्लिखित मिलते है– सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, ब्राह्मणवंशी, वैदिक आर्य, गुर्जरवंशी, अग्निवंशी और विदेशी वंशी।

यह कुल–विभाजन तो तर्कपूर्ण लगता है किन्तु 'अग्निवंशी' राजपूतों को विदेशीयों की सन्तान कहना पश्चिमी लेखकों और साम्यवादी इतिहासकारों के पूर्वाग्रह को ही प्रकट करता है। पश्चिम लेखकों ने भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से निम्न एवं हेय बनाने और अपनी संस्कृति को महान बनाने के लिए भारतीय इतिहास एवं इसको नायकों को महान नहीं माना बल्कि, विदेशी आक्रांताओं को महान कहा। सिकन्दर, अकबर, बाबर, तैमूर, अब्दाली आदि विदेशी सरदारों को प्रमुख स्थान दिया गया। इसका कारण उनका यहां राज करना और यहां की धन–दौलत को लूटना था। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय महान नायक विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, भोज अशोक, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, शिवाजी, पोरस आदि महाबलि एवं विजयी सम्राट एवं राजा थे जिन्होंने विदेशियों को परास्त किया था। किन्तु उनकी विजयें चिरस्थायी नहीं रहीं। उन्हें विदेशी इतिहासकारों ने तो अपने अहम के कारण निम्न सिद्ध किया जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति पर विदेशी शिक्षा प्राप्त प्रारम्भिक राजनेताओं ने उसी इतिहास के तथ्यों को सत्य समझकर भारतीय इतिहास को शिक्षा के क्षेत्र में प्रचारित–प्रसारित किया। इसका कारण देश में मुसलमानों और अन्य विदेशी जाति के पर्याप्त संख्या में देश के बचे रहने के कारण एवं राजनैतिक विवशताओं के कारण उन्हें ऐसा करना पड़ा। वर्तमान समय तक भारतीय इतिहास को गहन अध्ययन, सत्यता एवं राष्ट्र–अस्मिता के दृष्टिकोण से नहीं लिखा जा सका है। विदेशी इतिहासकारों के तर्कों, विकासवाद की थ्योरी एवं आर्यों के यहां मूल निवासी न मानने के तर्क पर ही इतिहास की भित्ति खड़ी की गई है– यह राष्ट्रीय विडम्बना

है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि अगर भारतीय सभ्यता समृद्ध नहीं थी तो ये विदेशी लुटेरे अपार धन कैसे लूट कर ले गए और इनके देश तो आजतक भी भारत की तुलना में विकसित नहीं है और इनका प्राचीन साहित्य भी वेदों से प्राचीन नहीं है।

राजपूत आर्यों के वंशज

"आर्य बाहर से आये और उन्होंने यहां की प्राचीन जातियों को परास्त कर दक्षिण की ओर भगा दिया।" यह भ्रामक तथ्य इतना प्रचारित किया गया कि भारतीय संस्कृति की नींव ही हिल गई। भारतवर्ष जिसे प्राचीनकाल से यानी मुसलमानों–यवनों से पूर्व, 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था वह जाहिलों, सपेरों, गडरियों, अंधविश्वासियों, धोखेबाजों का देश बन गया। हास्यास्पद तर्क है कि आर्य मंगोलिया, फारस, साइबेरिया, ध्रुवों से यहां आये थे। ये तर्क विदेशी अधकचरे, यहां की भाषा–संस्कृति को न समझने वाले पढ़े–लिखे लेखकों द्वारा दिये गए हैं। यदि ऐसा होता तो वेदों से पूर्व का साहित्य वहां समृद्ध रूप से मिलता। ये देश तो जंगली कबीले, अर्द्धसभ्य एवं हिंसक जाति के लोग थे। आर्य कैसे मान लिए गए? यह एक व्यंग्य ही तो है। केवल भाषा के कुछ शब्दों की साम्यता, भौगोलिक स्थिति, शासकों की हार आदि से तथ्य सत्य नहीं माने जा सकते। वेदों में कहीं भी ऐसा उल्लिखित नहीं है कि 'आर्य' बाहर से आए। यदि ऐसा होता तो वेदों, पुराणों एवं मुगलों के अन्त तक यह तथ्य ऐतिहासिक पुस्तकों एवं साहित्य में अवश्य मिलता। रामायण, महाभारत, संस्कृत, नाटकों, काव्यों, प्राकृत भाषाओं में आर्यपुत्र, आर्य, आर्यावर्त आदि शब्द इस भूमि से सम्बद्ध राजाओं अथवा सम्भ्रांत नायकों को कहे गये हैं। मंगोल, फारस, चीन आदि के शासकों को आर्य कहने की परम्परा नहीं मिलती।

'राजपूत' शब्द ग्याहरवीं शती से सैंकड़ों वर्ष पहले से मूल रूपों में प्रयुक्त मिलता है। जिससे यह सिद्ध होता है कि क्षत्रिय

राजाओं को 'राजन्य' 'राजपुत्र', 'देवपुत्र' आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार गौरीशंकर हीरानन्द ओझा ने राजपुत्र का उल्लेख कौटिल्य के ''कालिदास'' के ''मालविकाग्निमित्र'' अश्वघोष के ''सौंदरानन्द'' तथा बाणभट्ट के 'हर्ष चरित' एवं 'कादम्बरी' ग्रंथो के विभिन्न अर्थों में किया जाना बतलाया है। कौटिल्य ने (ई. पूर्व तीसरी शती) राजा के पुत्रों को 'राजपुत्र' तथा हवेनसांग ने यात्रावर्णनों में राजाओं को 'राजपुत्र' के रूप में उल्लेख करके उन्हें क्षत्रिय माना है।

कल्हण की 'राजतरंगिणी' में 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग भूस्वामियों के रूप में किया गया है; किन्तु उन्हें क्षत्रियों के 36 वंशों से सम्बन्धित माना है। अतः 12वीं शती के प्रारम्भ में 'राजपुत्र' या 'राजपूत' वंश एक जाति के रूप में अस्तित्व में आया। हां, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि इन राजाओं के पूर्व वंशजों ने बौद्ध धर्म अपना लिया था। अतः आबू में इन्हें शुद्धिकरण करके पवित्र किया गया तथा 'राजपूत' एक जाति के रूप में समाज में मान्यता दिलवाई गई।

इसका एक अन्य कारण भी था कि रियासती शासक अपने को राजन , राजपुत्र कहते थे और उनके सम्बन्धी राजपुत्र प्राचीन काल में यूनानी, शक, कुशाण, हूण आदि विदेशी जातियों से पैदा हुए थे। इन देशी और विदेशी शासकों और सामन्तों के वंशज राजपुत्र थे जो अपने राज्य विनष्ट होने पर भी स्वयं को राजपुत्र (राजपूत) कहते थे। तभी प्रथम शति के आसपास 'मनुस्मृति' लिखवाई गई ताकि ये संतानें ब्राह्मण–क्षत्रिय न कहलाए।

इस सम्मिश्रण से हटकर ही आर्यों की परम्परा में 'राजन्य; 'राजपुत्र एवं 'राजपूत' राजनैतिक कारणों से अस्तित्व में आये। इन बासठ राजपूत कुलों के कुलदेवता उनके पूर्वपुरूष अधिकांश प्रथम राजा बने। अग्निकुल के चारों कुलों के कुल देवता उनके दीक्षित होने वाले राजपूत बने। परमार वंश का कुलदेवता अग्निकुण्ड से शुद्ध होने

वाला 'कुलपुरूष' जगदेव परमार बना जिसने धारा नगरी (उज्जैन) से बाहर आबू के समीप सिद्धराज जयसिहं को हराने के बाद, आणन्द, चक्रदुर्ग, दूरसमुद्र, उत्तरी भारत फिर जम्मू अख्नूर तक राज्य स्थापित किया। गुग्गा चौहान भी इस कुल का चौहान राजा था जिसने अपने भाइयों को हराकर अनेक विख्यात विजयें प्राप्त कीं और कुल देवता माने गए। इसी प्रकार सोलंकी और प्रतिहार कुल के प्रथम राजा 'कुलदेवता' माने गए। किन्तु ये इन वंशों के ही कुलदेवता थे, अन्य प्रजा के ये इष्टदेव या ग्रामदेव बन गए। ये इष्टदेव प्रजा द्वारा तब बदल जाते थे जब लोग किसी दूसरे स्थान पर या दूसरे प्रदेश में बस जाते थे। इष्ट देवता प्रायः कुलदेवता नहीं होता। वैष्णव परम्परा के लोग किसी दूसरे स्थान पर या दूसरे प्रदेश में बस जाते थे। वैष्णव परम्परा के लोग शैव परम्परा के इष्टदेवों को अपना सकते हैं। पौराणिक परम्परा के इष्ट देव हनुमान, कृष्ण, राम, शिव आदि आस्थानुसार अपनाए जाते रहे हैं। ग्राम देवता तो इष्टदेवता होता ही है। इष्ट का अर्थ ही है जिससे मनोवांछित फल प्राप्त हो। ग्राम में बसने पर वहां के देवता को सामाजिक व्यवहार से मानना ही पड़ता है। इस प्रकार इष्टदेवता स्थानीय देवता बन जाता है।

चन्द्रवंश से सम्बन्धित राजा चन्द्रवंश से आगे गणों–कुलों में विभाजित अपने को यदु, कुरू आदि वंशों में कुलदेवता पाण्डव वीरों को मानने लगे। सेन, पाल, तोमर, आदि वंश कुलदेवता पाण्डव वीरों को मानते हैं। हस्तिनापुर में बसकर पाण्डवों ने अपनी कुलदेवी 'योगमाया' को कृष्ण के सहयोग से विधिवत स्थापित किया था। अतः तोमरों की कुलदेवी 'योगमाया' 'योगेश्वरी' अथवा 'चिलाय माता' कहलाई। तंवरों की कुलदेवी चिलाय माता ने पक्षी का रूप धारण कर राव द्योतजी के पुत्र जयरथ जी जाटू सिंह की बाल अवस्था में चील का रूप धारण कर रक्षा की थी अतः योगमाया का नाम चील के नाम पर ''चिलाय माता'' पड़ा।

वस्तुतः क्षत्रिय राजाओं की आराध्य देवियां नवदुर्गाओं के प्रतिरूप ही रहे हैं। युद्ध में विजय के लिए महिषमर्दिनी दुर्गा तथा रौद्र रूप महाकाली अथवा अन्य देवियों को इन्होंने कुलदेवियों के रूप में पूजा है। यहां यह स्वयंसिद्ध तथ्य है कि जहां परिवार के पूर्वज निवास करते रहे होंगे उस गांव के नाम पर या जहां देवी–देवता का मन्दिर रहा होगा वहां उसका अपभ्रंश नाम प्रचलित हो गया होगा जैसे – दुर्गा के विभिन्न रूपों को अन्नपूर्णा, बडोला देवी, शिकारी देवी, जखौली देवी, हाटेश्वरी देवी आदि।

राजपूतों की कुलदेवियां:– कुछ प्रख्यात राजपूतों की कुल देवियां उनकी आस्था एवं प्रवृति के अनुसार दुर्गा के किसी रूप में इस प्रकार मान्यता प्राप्त हैं– चौहान वंश की 'आशापूर्णा देवी', परमारवंश की 'सच्चियाय' या काली, परिहार की 'योगेश्वरी', सोलंकी की 'क्षेमकरी', गौडों की 'महाकाली', राठौर की 'नागाणाराय', शिवाजी की 'तुलसा भवानी', सिसोदिया की 'बाणमाता' गहलोत की 'बाणेश्वरी' या 'बायण माता', बुन्देलों की 'अन्नपूर्णा', चन्देलों की 'जालपा', भाटी की 'स्वांगयांग' (आवड़जी) जादव वंश की 'कैला मां'।

इस प्रकार राजपूतों की कुछ अन्य कुलदेवियां–'करणीमाता' 'जीणमाता', 'दधिमकीमाता', 'तनोटमाता', 'शीतलामाता', 'आईमाता', 'अंबुदा माता', 'शिलामाता' एवं 'शाकम्बरीमाता' (जब राजस्थान में अकाल पड़ा तब देवी मां ने यहां शाक–सब्जियां और जल उत्पन्न किया तथा लोगों की जान बचाई) आदि हैं जो स्थान नामों से लक्ष्मी, दुर्गा, काली आदि के स्वरूप में मान्यता प्राप्त हुई।

ब्राह्मणों के मूलपुरूष सप्तऋषि थे उनसे ही कश्यप आदि की सन्तानों के रूप में ऋषिकुल बने। वैदिक तथा पौराणिक देवताओं को 'कुलदेवता' या 'इष्टदेवता' मानने की परम्परा बनी। राजपूतों के कुलदेवता या इष्टदेवता ब्राह्मणों ने भी अपना लिए। कुलदेवियां भी वैष्णव एवं शैव धर्म सम्बन्धी मान्यता प्राप्त हुई। भारद्वाज कुल से

जोशी ब्राह्मण अस्तित्व में आए है जिनकी कुलदेवी मातापुरी, अत्रिकुल से कुलकर्णी, जिनकी कुलदेवी लक्ष्मी, हरितस से शुक्ल ब्राह्मणों की महालक्ष्मी, कश्यप से अग्निहोत्री की तुलजादेवी या योगेश्वरी, वशिष्ठ से स्मार्तों की सप्तश्रृंगी, आंगिरस की महाकाली, कौशिक की ज्वालाजी, भार्गव की मनसादेवी, गौतम की जालपा तथा भारद्वाज कुल की मातापुरी आदि कुलदेवियां पूजनीय बनी हैं।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। इसी प्रकार मानव विकासक्रम में वैदिक पौराणिक देवी–देवताओं के स्वरूप कुलदेवता एवं कुलदेवियों के रूप में परिवर्तित होते रहे हैं। वास्तव में वर्तमान कुलदेवता, कुलदेवियां एवं इष्टदेव वैदिक–पौराणिक परम्परा की श्रृंखला की ही कड़ियां हैं। मानव–समुदायों ने उन्हें अपनी प्रवृति एवं आस्था के रूप में ही अपनाया है। यह भी एक तथ्य है कि राजपूतों ने अपने पूर्वजों को ही देवता के रूप में पूजना शुरू किया।
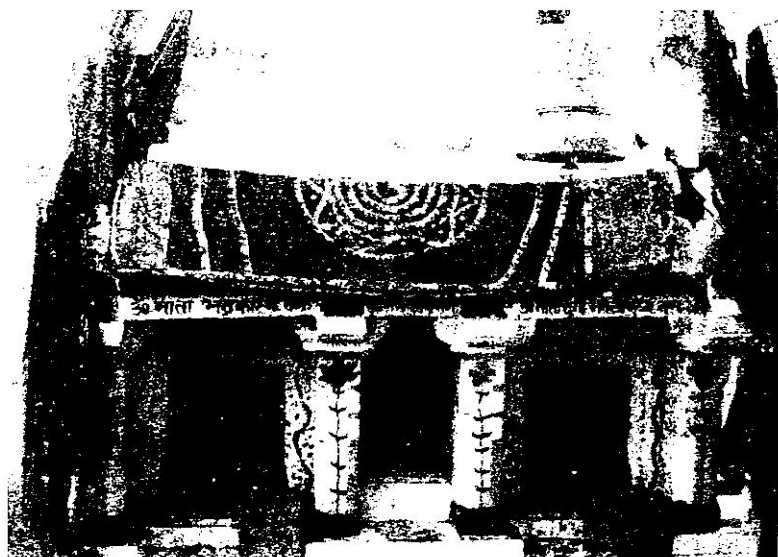
भद्रकाली मंदिर, जखौली (11–12वीं शती ई.)

3

धारावाला देव : छत्रपति महावीर जगदेव परमार

अर्की (बाघल) क्षेत्र के 'धारावाले देव' का सम्बन्ध ऐतिहासिक सम्राट भोज परमार से है। यह देव प्राचीन मालवा (उज्जैन) की राजधानी धारानगरी से आया है, अत: इसे धारा वाला देव कहते हैं। राजा भोज का पुत्र था उदयादित्य, और उदयादित्य का पुत्र था - जगदेव परमार। जगदेव परमार 12 वीं सदी का पराक्रमी वीर था जो गुजरात, राजस्थान और हिमाचल के इस क्षेत्र में जनश्रुतियों में वीर के रूप में विरव्यात है। इस ऐतिहासिक वीर का विवरण पर्याप्त रूप से कर्नल टॉड द्वारा लिखित राजस्थान तथा फोवर्स साहिब के गुजरात के इतिहास में मिलता हैं। धारावाला देव के खुले चौक अर्की क्षेत्र के प्राय: हर गांव में पाए जाते हैं। कहते हैं युद्ध में वीरगति प्राप्त करने के पश्चात भी इसका धड़ शत्रु से लड़ता रहा था। यह भी अनुश्रुति है कि महाकाली ने कालिका स्थान (उज्जैन) पर इनका सिर पुन: पुनर्जीवित कर दिय था जो इन्होने अपने स्वामी पाटन के सिद्धराज के कहने पर देवी को उसकी उम्र बढ़ाने के लिए स्वयं काट कर चढ़ा दिया था।

बाघल राजवंश की हस्तलिखित राजपुरोहित से प्राप्त वंशावली के अनुसार धारानगरी के राजा उदयादित्य का पुत्र था- जगदेव (पंवार)। जगदेव परमार चक्रवर्ती सम्राट था। वह काली का उपासक था। एक बार जगदेव ने अपने शौर्य के कारण एक भिरवारी के लिए अपना सिर काट कर दे दिया था। काली माता की कृपा से उसका सिर लग गया था। वह त्यागी और प्रजाप्रेमी शासक था। जगदेव तलवार लेकर अपनी सेना सहित दिग्विजय करने निकला। उसने पहले दक्षिण (कर्नाटक) में विजय प्राप्त की, फिर सिंहल द्वीप गया। वहां वह बहुत दिनों तक ठहरा। वहां से उज्जैन होता हुआ द्वारका आ पहुंचा। वहां अनेक तीर्थों में स्नान - दान करके कांचीपुर (मद्रास) विजय कर उज्जैन वापिस आया। उसने 52 वर्ष तक राज्य किया और 85 वर्ष की आयु में बड़े पुत्र जगधवल को राज्य देकर स्वर्गप्रयाण किया। इस

पराक्रमी वीर की स्तुति देवते के चेलों द्वारा इस प्रकार गाई जाती है।

कोट कमलो रा टीका देवा
राणी पहाड़ बन्तिये जाया
कोट कमोले तेरे कल्याणेया तेरी चौंरी बणाई
मोटे – मोटे खाड़ू बाकरे फाटे चिंजण पाई रसोई
कोट कमोलो ते सूरत धाई सेरी रे घाटे आया
सेरी रे घाटे तेरे कल्याणेया तेरी चौरी बणाई
मोटे – मोटे खाड़ू बाकरे फाटे चिंजण पाई रसोई
सेरी रे घाटो ते सूरत धाई जाडुवे चौरी आया ....

जाडुवे चौरी ते सूरत धाई संवें कण्यारे आया
सवें कण्यारो ते सूरत धाई अर्की पौलिया आया .... ।

दस देवगीत से इस देव का 'सेरी घाट' जहां इसका मूल स्थान है तथा बाद में जाडुए, कुनिहार तथा अर्की आने का पता चलता है, लेकिन यह इस देव की प्रथम यात्रा का विवरण है। यह देव किसी युद्ध में मारा गया था, इसका स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। बाघल बन्दोबस्त रिपोर्ट 1904 ई. के अनुसार धारा नगरी मालवा से परमार वंश के तीन भाई बद्री नारायण यात्रा पर यहां आये थे। अजय देव अर्की में, विजय देव बघाट में और मदन देव सिरमौर के किसी क्षेत्र में बस गये थे। इन क्षेत्रों में 'मावी' (म्वाई) सरदार राज्य करते थे। बिना युद्ध के तीनों भाई यहां के शासक बन गये। देव के स्तुतिगानों में जगदेव का नाम, वीरता तथा विजय अभियानों के संकेत मिलते हैं।

धारावाला देव को छत्रपति गजपति माना जाता है। इस प्रकार का प्रतापी राजा इस वंश में अन्य नहीं मिलता - यह जगदेव परमार का स्तुतिगान ही लगता है - देवता के बंजतरी (मंगलामुखी) देवता का खेल (देवता से पूछ) से पूर्व हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं।

'छत्रपति, नरपति, गजपति, भगवती राणी पहाड बन्तिये जाया
कोट कमलो रा टीका देवा
ये रोट – प्रसाद तेरे अरज करूं एं
इसको कबूल करना। उत्तरा – दक्खना, पूर्व, पच्छमा ते
नजर भरी की देखणा।
दाडुवें रीया चौकी मानी की
सेरी रे घाटो मानी की
तेरी ये सेवा ए ये सब कबूल करनी
आसा री मनोकामना इच्छा पूरी करनी
ईंगला, पिंगला, नारदा, शारदा, कालिया भट्टणी मानी की
राजा जगदेव म्हारी अर्जे कबूल करना
म्हारी अरज तांगे – तेरी अरज सच्चिया दरगाहा दे।'

इस स्तुति में राजा जगदेव पहले दाड़वा चौकी, जाडू चौकी आया जहां 'दिऊलू' की ढ़ोल की थाप पर देवता का धड़ बिना सिर के खेलता रहा। खेत में प्रकट होने पर इसीलिए इसके स्थल खुले चौक ही होते हैं। इसके मन्दिर नहीं बनाये जाते। अनुश्रुति यह भी है कि यह देव इस स्थान पर मारा गया था। लेकिन इस घटना का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि जगदेव यहां युद्ध में मारा गया हो।

कोई अन्य प्रारम्भिक राजा - टीका यहां अवश्य मरा होगा जिसकी स्मृति में जगदेव का मन्दिर बना दिया गया। जगदेव परमार सम्बन्धी अनुश्रुतियां राजस्थान तथा गुजरात में समान रूप से प्रचलित रही हैं। इसकी वीरता पर उपन्यास और किस्से लिखे गये हैं।

देवगाथा वंशावली: प्राचीन मालवा देश की धारानगरी में उदयादित्य राज्य

करता था। उसके दो रानियां थी। एक बाघेला कुल की और दूसरी सोलंकी कुल की। बाघेली 'मानीती' थी। और सोलंकिनी 'अनमानीती' थी। बड़ी रानी बाघेली के पुत्र का नाम रणधवल था सोलंकिनी का बेटा जगदेव रणधवल से दो वर्ष छोटा और कुछ सांवला था, परन्तु सुन्दर और सुडौल था। राजपरम्परा के अनुसार छोटी रानी सोलंकिनी को राजा ने जागीर के रूप में निर्वाह के लिए एक गांव दे रखा था जबकि बाघेली को स्वर्ग जैसी सुविधाएं प्राप्त थीं।

जगदेव जब बारह वर्ष का हुआ तो राजा ने मुराद नामक ख्वास के द्वारा उसे दरबार में बुलाया। जब वह दरबार में आया तो राजा ने उसके वस्त्र मैले और पुराने से देखे तो आश्चर्यचकित हुआ। राजा ने जब इसका कारण पूछा तो जगदेव ने साफ-साफ बता दिया कि एक गांव की आमदनी से उन माँ-बेटे का निर्वाह कठिनाई से होता है। राजा ने जगदेव को दो रूपये रोज देने की भंडारी को आज्ञा दी। जगदेव ने बाघेली रानी के क्रुद्ध होने के भय से लेना अस्वीकार कर दिया। तब राजा ने उसे एक हजार रूपये नकद दिलवा दिए।

उन दिनों धारानगरी पर पड़ौसी राज्यों के हमले हो रहे थे, राज्य की कमजोर स्थिति के कारण उदयादित्य मांडू राजा के जहां शरण लिए हुए था। धारा नगरी में उसकी बाघेली रानी कहीं दिन काट रही थी। गौड़ देश के राजा गंभीर सिंह ने अपनी कन्या की सगाई जगदेव से करने के लिए राजपुरोहित और दीवान को भेजा, परन्तु बाघेली रानी के प्रपंच से लालच में आकर जगदेव के बदले रणधवल से सगाई कर गये। रणधवल की शादी की बारात में जगदेव को साथ लाने की गंभीर की शर्त थी, अत: जगदेव भी नियत तिथि पर बारात में साथ गया। मार्ग लम्बा था। रणधवल की बारात मार्ग में एक दिन टोंक टोडा में ठहरी, वहां राजा जयसिंह ने जगदेव के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपनी कन्या वीरमती उससे व्याह दी। इस तरह बाघेली की इच्छा न होने पर भी जगदेव का विवाह स्वत: हो गया।

जब जगदेव 15 वर्ष का हुआ तब राजा उदयादित्य माण्डू से लौटा, राजा के आने की खुशी में नगर के बाहर दरबार लगा। सब लोग आये, पर जगदेव न आया । राजा ने उसे बुलाया और अपने सारे आभूषण अपनी तलवार और घोड़ा भेंट में दिया। बाघेली रानी के प्रपंच के कारण जगदेव ने उन्हें वापिस लौटा दिया। जगदेव ने सब सामान लौटा दिया, परन्तु मन को बड़ा दु:ख हुआ। वह माता की आज्ञा लेकर घर से लिकल पड़ा। वह पहले

ससुराल टोंकटोड़ा राजधानी गया और वहां अपनी पत्नी वीरमती को साथ लेकर बड़ी विघ्न बाधाएं तथा जंगलों को पार कर सिद्धराज की राजधानी पाटन पहुंचा। वहां वह अपनी वीरता के कारण सेनाओं का अधिकारी बन गया। सिद्धराज ने जगदेव की सहायता से अपने खोए हुए क्षेत्रों तथा किलों को प्राप्त कर लिया। सारे पाटन में जगदेव की जय - जयकार होने लगी। भुज के राजा जामलाखा की बड़ी कन्या को जब सिद्धराज ब्याहने गया तब जगदेव भी साथ था। वहीं पर छोटी बहन से जगदेव की भी विवाह हो गया। सिद्धराज की छोटी रानी जाड़ेची जो सुकुमार और सुन्दर थी, उस पर चामुण्डा देवी का वीर काल भैरव उसके शरीर में अपनी दिव्य शक्तियों से छाने लगा तो जगदेव ने बहादुरी से उसको पछाड़ कर उसकी टांग तोड़ दी और तहखाने में बंद कर दिया। सिद्धराज ने जगदेव को एक बड़ी जागीर तथा धन प्रदान किया।

परन्तु जगदेव की लोकप्रियता से वह ईर्ष्याभाव भी रखने लगा। उसे भय हो गया कि कहीं उसके बाद जगदेव राजगद्दी का उत्तराधिकारी न बन जाए।

कहते हैं काल भौरव को कैद करने पर चामुण्डा देवी भिखारिन का रूप धारण कर राजा के पास पहुंची। राजा ने उसे पर्याप्त दान दिया तो चामुण्डा ने उसे बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया। इस पर राजा ने देवी से इसका कारण पूछा। देवी ने उत्तर दिया कि दायां हाथ तो जगदेव के लिए है क्योंकि वह अधिक दानी है। कहते हैं जब चामुण्डा ने जगदेव से उसका सिर दान में मांगा तो उसने अपने सिर को काटकर भेंट कर दिया था। परन्तु देवी ने उसे पुनर्स्थापित कर दिया था। यह घटना संवत् 1174 के चैत्र मास की तृतीया तिथि रविवार को हुई थी।

इस घटना से सिद्धराज जगदेव पर और भी नाराज हो गया। उसने धार पर चढ़ाई करने की सोची। जगदेव ने विरोध किया। वह नौकरी छोड़कर अपने परिवार सहित धारानगरी वापिस हुआ। साथ उसके दो पुत्र जगधवल और बीजधवल वल भी थे। पिता उदयादित्य ने उसका बड़ा सम्मान किया। बाघेली रानी भी अब उससे प्रसन्न हुई। उदयादित्य वृद्ध हो गये थे और उनका पुत्र रणधवल योग्य नहीं था। राज्य की स्थिति दयनीय और कमजोर थी। थोड़े ही दिनों में राजा उदयादित्य बीमार हुआ और जगदेव को उत्तराधिकारी बनाकर इस लोक से विदा हुआ। दानों रानियां उसके साथ सती हुई।

जगदेव ने 15 वर्ष की आयु में धारानगरी छोड़ी, 18 वर्ष तक सिद्धराज की नौकरी की और 52 वर्ष राज्य करके 85 वर्ष की आयु में बड़े पुत्र जगध वल को राज्य देकर स्वर्गवास किया। तीनों रानियां सती हुई।

इस औपन्यासिक प्रसंग से पता चलता है कि उदयादित्य किसी युद्ध अभियान में वीरगति को प्राप्त हुए होंगे – इसीलिए रानियां सती हुयी होंगी।

धारावाला देव की वंशावली जो प्राय: देवता के 'गुर' (डाऊ) के पास होते है – उसमें इस प्रकार का विवरण मिलता हैं।

''धारानगरी में सिन्धुपाल नाम का राजा राज्य करता था। वह अजर – अमर राजा भर्तृहरि का सखा था। पूर्वकाल में कौंडिन्य गोत्र में गोपीचन्द्र नामक महायति सिन्धुपाल उसका छोटा भाई था। वह शत्रुओं के लिए भयानक था। वह ब्राह्मणों को पूजने वाला तथा घूमने का शौकीन था। दान और शूरवीरता में वह कविजनों का प्रिय था। वह राजाओं और ब्राह्मणों का पालक था। संगीत में उसकी विशेष रूचि थी। उसके वंश में जगदेव हुआ। उसके कृत्यों से राज्य का बहुत विस्तार हुआ और हाथियों की वृद्धि हुई। उसने बहुत से बड़े राजाओं को वश में किया। वह विराट देश में गया। वह सडोट गांव मे जाकर बसा। उसने लोकप्रियता प्राप्त कर सत्कर्मों के लिए पुत्रेष्ठि यज्ञ किया। उसने अम्बा और लक्ष्मीनारायण की आराधना की। उसने शिव का अभिषेक किया और महाचण्डिका की पूजा आराधना की। भाग्य से उसके दो पुत्र हुए।''

देव के चेले इसे 'सूड़देव' कहकर स्तुतिगान करते हैं 'सडोट गांव' में रहने के कारण इसे 'सूड़देव' कहा गया। कुछ भी हो, जगदेव की वीरता के कारनामों की स्तुति ही भिन्न – भिन्न प्रकार का पूजा विधियों में मिलती हैं।

इसके अतिरिक्त धारावाला देव के साथ 52 वीरों का सरदार नारसिंह वजीर के रूप में संयुक्त माना जाता है।

देव – विरुदावली

जय देवा धारावालेया, तेरी जय – जय सेरीघाटो वालेया
जय बिगड़ी बनाणे वालेया! तेरी जय – जय धारावालेया

धन्य सोलंकिनी मात तेरी, धन – धन धारानगरी
किया बेटा बलिदान सिद्ध खातिर, किया बेटा बलिदान
तेरी ऋणि पाटण नगरी। तेरी जय – जय धारा वाले या!

तेरी धन – धन बीरमती सती रानी, पल – पल साथ चली
जीवन के गहरे अंधेरों में, बन धर्म की जोत जली! तेरी जय .....

प्राण बचाये सिद्ध रानी के, भैरों कैद किया
फिर कहे मात चामुण्डा के, कर लंगड़ा छोड़ दिया ..... तेरी जय ....
कहे फूलमती, सोलंकिनी, धार की आन प्यारी
हम शीश पहले करें दान, देखे दुनिया सारी .... तेरी जय ....

परीक्षा ली मां भट्टणी ने मुंह की सिद्धराजे खाई
नया सिर लगाया तेरे धड़ पर, मां से जिंदगी नई पाई। तेरी जय......

हर छठे महीने पूजा तेरी, चौथे साल में चौरसी करे
कोई चढ़ाते हलवा – नारियल कोई चढ़ाते भेडू
कोई रोट – कड़ाह करे। तेरी जय जय सेरी घाटो वालेया ....

ज्येष्ठ – कार्तिक, जेठे इतवार को, तेरा मेला लगे सेरीघाट
लोग तेरे दर पूछ पाकर, तुझे दिल की बात सुनाकर
चले खुश होकर घी की वाट .... तेरी जय जय .....

जय देवा धारावालेया, तरी जय जय सेरीघाटो वालेया
भगता री रक्षा करदा – जय बिगड़ी बनाणे वालेया! तरी जय .....

पन्द्रह साल की बाली उमर में, राजा सिद्धराज की नौकरी की थी।
अठारह साल पाटण में लगा, अमर इतिहास की रचना की थी।
बावन साल तक राज किया, छत्रपति कहलाये।
काम किये जगदेव जी पावन, देव धारावाले कहाये
पचासी साल की उमर में, कह जगधवल को गद्दी बिठाया

तुम राजकाज चलाना बढ़िया, मेरा वक्त जाने का आया।

चावड़ी सोलकिनी, जाड़ेजी संग हंसते हुए हुई सतीरानी
महापुरुष धारा वाले जगदेव की पूर्ण हुई कहानी।
पावन विरदावली देओकी, जो सुने और सुनाए
सदा कृपा रहे धारा वाले की उनपर, मनोरथ पूर्ण हो जाएँ।
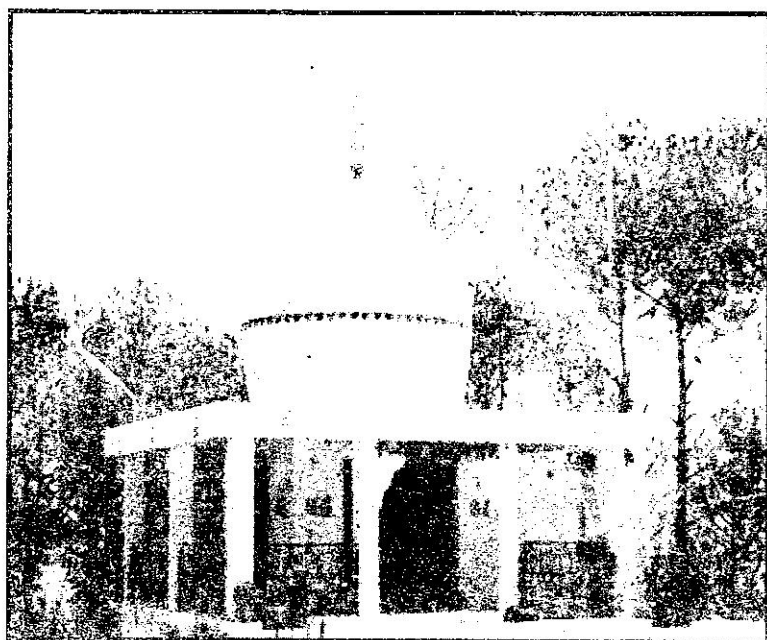
धारावाला देव - सेरीघाट

देवगान

छत्रपति महाराजा देवा छत्रपति महाराजा

ढ़ोल बजे तेरी टाकुली देवा शंखा रा शणकारा
छत्रपति महाराजा देवा, छत्रपति महाराजा !

दाहिणे कनारे आपू बैठेया बायें परीया रा मलखाड़ा
परीया रा मल खाड़ा देवा, परीया रा मलखाड़ा !

छत्रपति महाराजा देवा छत्रपति महाराजा !

दाहिणे कनारे आपू बैठेया बायें बैठेया नारसिंग बजीर
नारसिंह बजीर देवा, नारसिंह बजीर !
छत्रपति महाराजा देवा छत्रपति महाराजा
नारसिंह बजीर देवा परिया रा सरदार
चीट्टे तेरे कपड़े देवा नीले घोड़े रा स्वार

नीले घोड़े रा स्वार देवा नीले घोड़े रा स्वार
छत्रपति महाराजा देवा छत्रपति महाराजा !

सेरी घाटे तेरी चौंरी देवा गांवे - गांवे नमाला
गांवे - गांवे नमाला देवा, गांवे गांवे - नमाला
छत्रपति महाराजा देवा छत्रपति महाराजा

जय करनी महाराजा तेरी जय करनी मेरे राजा

छत्रपति महाराजा देवा छत्रपलि महाराजा !
ढोल बजे तेरे टाकुली देवा शंखा रा शणकारा !

पूजा विधान

देव धारावाले की पूजा हिन्दू देवी-देवताओं की तरह की जाती हैं जल, सिन्दूर, फूल, अक्षत, धूप, दीप आदि चढ़ाकर तथा देवता की स्तुति गान करते हुए तन-मन की एकाग्रता से देवता के आगे दण्डवत प्रणाम किया जाता हैं। एक भक्त इस प्रकार दण्डवत् होता हैं

स्तुति

''छत्रपति, नरपति, गजपति, राणी पहाड़ बंतीये जाया !

कोट-कमोलो रा टीका देवा, राणी पहाड़ बंतीये जाया !

ये रोट-प्रसाद तेरे अरज करूंए

इसको कबूल करना

उत्तरा-दरवणा, पूर्वा-पच्छमा ते

नजर भरी की देरवणा !

ढाड़वे चौकीया मानी की

सेरी रे घाटो मानी की

तेरी ये सेवा ए।

ये सब कबूल करनी !

आसा री मनोकामना पूर्ण करनी !

ईंगला-पिंगला, नारदा, शारदा,

कालिया भट्टणी मानी की

राजा जगदेव म्हारी अर्ज कबूल करना !

महारी अरज तांगे,

तेरी अरज सच्चिया दरगाहा दे !

इस प्रकार की स्तुति देवता के देऊंवे तथा मंगलामुखी करते हैं। इसके पश्चात मनौती के अनुसार भेड़-बकरे की बलि, या नारियल की बलि दी जाती हैं। देवता को छत्र, रूपये अन्न आदि चढ़ाया जाता हैं। धारा वाले देव की पूजा हर छमाही को की जाती हैं। चौथे साल चौरसी की जाती हैं। देव का मेला सेरीघाट में ज्येष्ट और कार्तिक मास के जेठे इतवार को आयोजित होता है। सक्रांतियों को तो साल भर देवता के दर्शन किये जा सकते हैं।

देव का स्वरूप दिव्य हैं। लम्बा कद, चौड़ा मुख, माथे में लाल सिन्दूर का टीका, लम्बा सफेद चोगा, पैरों में खड़ाऊँ, नीले घोड़े पर सवार या ठक-ठक खड़ाऊं का आवाज में चलता हुआ भक्तों को प्रिय लगता हैं।

देव को सफेद झण्डा आवश्यक रूप से चढ़ाया जाता हैं। इनके चौकों पर खड़ाऊ के ढेर भेंट किये मिलते हैं। देवता का खुला चौक बनाया जाता हैं क्योंकि खुले मैदान में देव का सिर बहुत समय तक खुला पड़ा रह गया था जिसे काली ने पुनर्जीवित कर दिया था।

डुंगर गांव धार के शिला लेख से

डुंगर गांव के शिला लेख में जगदेव के प्रारभिक जीवन का विविध वर्णन मिलता हैं। इसके अनुसार यद्यपि धाराधीश उदयादित्य के कई पुत्र थे, तथापि उदयादित्य एक ऐसे पुत्र की कामना करता था जो बहादुर और योग्य हो। इसलिए उसने भगवान शिव की पूजा अर्चना और यज्ञ किये। शिव-वरदान से उसे जगदेव जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई। उदयादित्य की मृत्यु के पश्चात राज्य का भविष्य रानियों द्वारा जगदेव को सौंपने की चर्चा हुई, किन्तु जगदेव ने अपने बड़े भाई लक्ष्मण देव पक्ष में अपना अधिकार त्याग दिया। इसका कारण यह भी था कि उसने पार्वती के शाप के कारण भी ऐसा किया क्यों कि उसने अपने बड़े भाई से पहले विवाह किया था।

इस वर्णन से लगता है कि जगदेव उदयादित्य का सबसे छोटा बेटा था। हालांकि वह आसानी से मालवा का सिंहासन छीन सकता था लेकिन उसने त्याग दिया। उदयादित्य के बाद क्रमश लक्ष्मण देव और नरवर्मन राजा बने। संभवत: जगदेव लक्ष्मण देव के समय धारा में रहे क्योंकि उससे जगदेव

के अच्छे सम्बन्ध थे। नरवर्मन के समय जगदेव ने धारा को छोड़ा और कुछ समय वह कुन्तलेन्द्र (राजा) के दरबार में रहे।

डुंगर गांव की नौंवी प्रशस्ति-लेख के अनुसार जगदेव का अतिशयोक्ति पूर्ण काव्य वर्णन है। कुन्तलेन्द्र उससे बहुत स्नेह करता था। कहते हैं कुन्तल नरेश उसे अपने पुत्रों में भी सबसे प्रथम मानते थे। तथा राज्य का सेनापति, उसका दायां हाथ इतना ही नहीं। उसने जगदेव को अपने राज्य के गोदावरी नदी के उत्तरी क्षेत्र, जिसे विक्रमादित्य द्वितीय (1076 ई.) ने कुछ समय पूर्व ही हथियाया था, के क्षेत्र को शासन करने के लिए नियुक्त कर दिया था।

डुंगर गांव शिलालेख यमतमाल जिले के डुंगर गांव जो बरार राज्य के अन्तर्गत था जगदेव के सम्बन्ध में उपलब्ध है।

'जयनाद शिलालेख' निजाम राज्य के आदिलाबाद जिले में प्राप्त हुआ है। जयनाद शिलालेख के अनुसार जगदेव ने अनेक सैनिक विजयें प्राप्त की थीं- आनन्द, चक्रदुर्ग राजा की पराजय, दूर समुद्र राज्य में प्रवेश, आबू के समीप जय सिंह की पराजय और कर्ण को हराना आदि जगदेव को महायोद्धा सिद्ध करते है। जयनाद शिलालेख स्थल डुंगर गांव से 65 कि. मी. की दूरी पर स्थित हैं।

अग्निवंशी राजपूत

पंवार चन्द्रवंशी राजाओं की एक शाखा है जो बाद में (मध्यकाल) अग्निवंशी राजपूत बने। 16वीं शताब्दी में ये अग्निवंशी कहलाये जिन्हें एक यज्ञ के पश्चात राजपूतों की अग्निवंशी राजपूतों के रूप में मान्यता मिली।

यह प्रमाणित है कि 1305 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण एवं धारा के पतन के पश्चात पंवार और उनके सम्बन्धी बन्धु 'अग्निवंशी बन गये और अन्य चन्द्रवंशी ही रहे। यही कारण है कि उस समय के राजाओं के नाम पहले चन्द्र अथवा देव और बाद में सिंह के नाम से जाने जाते हैं।

धारा नगरी के पतन के पश्चात भोज कालीन राज्य मिट्टी मे मिल

गया। एक प्राचीन उक्ति प्रचलित मिलती है।

"नीर धारा, निरालम्बा, निराश्रिता सरस्वति
पंडिता – खण्डिता सर्वे भोज राजे दिवांगते ।"

धारा नगरी धारा रहित, बिना आधार के रह गई। सरस्वति देवी (विद्वान) भी निराश्रित हो गई। सम्राट भोज राज की मृत्यु के पश्चात विद्वान-पण्डित भी लुप्त हो गये। धारा पर पड़ौसी राज्यों के हमले और तुर्कों-मुगलों के हमले इसका कारण था।

वास्तव में राजा भोज (1015-1086) के पश्चात उसके पुत्र उदयादित्य (1059-1086) के समय तथा बाद में धारा में अराजकता, कायरता उत्पन्न हो गई। केवल उदयादित्य के पुत्र 'जगदेव परमार' की वीरता और पराक्रम के किस्से ही ऐतिहासिक काव्यों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों में मिलते है। वह भी ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार धारानगरी का कभी शासक नहीं रहा। इसका कारण उसके सौतेले भाई सोलंकिनी के पुत्र थे।

जगदेव अपने युग का पराक्रमी योद्धा था, जिसने गुरजरात, आन्ध्र, दक्षिणी भारत कर्नाटक, कल्याणी आदि राज्यों को गुजरात राजा सिद्धराज जयसिंह के सेनापति के रूप में ये विजयें प्राप्त की थीं। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राजा भोज के बाद अंतिम परमार वंश के योद्धा जगदेव परमार ही थे। उसके बाद अंतिम परमार वंश के पूर्वज के रूप में जनता ने जगदेव परमार की विजयों के कारण उन्हें पितृ देवता के रूप में मान्यता दी। उसके बाद धारा नगरी मालवा के पतन के साथ वहां मुगलों का शासन हो गया।

इतिहास के पृष्ठों से अख्नूर-अम्बारण राज्य का संस्थापक जगदेव परमार

कुछ समय गुजरात राजा के पास रहने के पश्चात राय जगदेव अपने कुछ सैनिकों के साथ उत्तरी भारत की ओर अभियान पर चल पड़े। विक्रमी संवत 1151 नदनुसार 1094 ई. को इनके साथ यह सैनिकों को छोटा सा दल कश्मीर के अख्नूर से दो मिल दूर उत्तर-पूर्व में स्थित विराट नगरी (Wrat

Nagari) पहुंचा यहां जगदेव ने अपनी राजधानी का निर्माण करवाया। जगदेव महाकाली अम्बा के भक्त थे, अतः राजधानी का प्रारम्भिक नाम 'अम्बा रण' पडा। जगदेव परमार को 'राय' नाम से पुकारा जाता था, क्योंकि यह उपनाम उनके वंश का नाम था। आज तक धारा राज्य के राजवंश के महाराजा, और अन्य सम्बन्धी 'राय' का उपनाम प्रयोग करते हैं।

जहां जगदेव परमार ठहरे उस स्थान का नाम 'अम्बारण' पड़ा जो बाद में 'अम्बाराईयां' नाम में परिवर्तित हुआ। जगदेव के वंशज अम्बा राइयां राजा नाम से जाने गये। इन वंशजों ने 600 वर्ष अरव्नूर राज्य में राज्य किया।

अरव्नूर राज्य की स्थापना करने वाले जगदेव परमार ने वहां एक सुन्दर महल एवं किले का निर्माण करवाया, जो अरव्नूर से पांच मील दूर 'गढ़ी' नामक स्थान में हैं। अरव्नूर में अम्बाराइयों की 20 - 25 पुश्तों ने राज किया जिनमें अधिकांश पराक्रमी एवं न्याय प्रिय राजा थे। संभावना है कि जगदेव ने यहां 52 वर्ष राज्य किया हो।

सौजन्य - दुघाने पवार (महाराष्ट्र राज्य)

दूरसमुद्र राज्य का भीषण – युद्ध तथा जगदेव की विजय

जयनाद शिलालेरव के 9 अनुच्छेद के अनुसार जगदेव के दूर समुद्र राज्य के भीषण युद्ध और विजय का काव्यमय वर्णन मिलता है उसके अनुसार - "दूर समुद्र राज्य के प्रत्येक घर में स्त्रियों को रोते - बिलरवते देरवा जा सकता था जिनके पति युद्ध में मारे गये थे। सेनापति और योद्धाओं की रक्तरंजित रवोपड़ियों के ढेर और भारी हाथियों के मृत शवों के ढेर युद्ध क्षेत्र में फैले थे, जिन्हें देरवकर मलद्वार सेनापति के हृदय में कठोर पीड़ा हो रही थी।

'होयसाल शिलालेरव' में इसके विपरीत जगदेव और विक्रमादित्य की पराजय का काव्यवर्णन भी लगभग इसी शैली में किया गया है। श्रवण बलगोला शिलालेरव (1159 ई.) के अनुसार विष्णु अर्थात विष्णुवर्द्धन होयसाल ने मालवा की समुद्र की तरह लहराती सेना को पानी की तरह पी लिया था जिससे जयदेव ओर विक्रमादित्य की सेनाओं की पराजय हुई थी। टेरीकेरा तालुक शिलालेरव में भी राजा बल्लाला के साथ युद्ध का ऐसा ही वर्णन है।

विद्वानों एवं इतिहासकारों के अनुसार यह प्रशस्ति के रूप में अतिरंजित वर्णन है। वास्तव में जगदेव ने इन सभी राजाओं के साथ युद्ध तथा विजयें प्राप्त की थीं और 1117 ई. के पश्चात वे कभी उतरी-भारत एवं कश्मीर के अखनूर पहुंचे थे जहां इन्होंने अनेक वर्षों तक नये राज्य की नींव डालकर राज्य किया।

डूंगरगांव शिलालेख के अनुसार जगदेव ने डूंगरगांव एक ब्राह्मण श्री निवास अग्निहोत्री को भेंट किया था जहां श्री निवास ने एक शिव मन्दिर का निर्माण करवाया जो उसने अपने पिता श्रीनिधि की स्मृति में धार्मिक अनुष्ठान के पश्चात करवाया था। 'जय नाद' शिला लेख से यह भी पता चलता है कि दहिया परिवार का योद्धा लोलार्क जगदेव का मन्त्री था जो उदयादित्य के सम्पूर्ण राज्यकाल में इस पद पर रहा।

कुछ विद्वानों के अनुसार पश्चिमी बंगाल के समल बर्मन (श्यामल बर्मन) जगदेव परमार की बेटी मालव्य देवी का विवाह हुआ था। जगदेव परमार, शूर, उदार और धार्मिक स्वभाव का योद्धा था, जिसके कारण उनकी ख्याति देश-विदेश में फैल चुकी थी।

डूंगर गांव की प्रशस्ति तर्कसंगत लगती है जिसमें कहा गया है कि ऐसा कोई देश, गांव, समाज और सभा नहीं है जहां शूरवीर जगदेव की प्रसिद्ध और प्रशंसा के गीत दिन-रात न गाये जाते हों। **'न स देशो न स ग्रामो न स लोको न स सभा न तन्नक्तं दिवं यत्र जगद् देवो न गीयते।'** शिलालेख डूंगर गांव।

सूड़देव प्रणमाम्यहं

सूड़देव प्रणमाम्यहम्
वन्दे मंगल प्रिये !
सेवकानां सुखकरं

कलौ सद्य फल पदम्
जया देव्य सत्व हर्ण !
डाकिनी - शकिनी हरम् !
सर्वोत्याज्य व्यथा चिन्ना !
भ्रमी हलीक नाशनी
सर्व व्यथा प्रशमनं !

सूड़देव प्रणमाम्यहं !
माहामार्यादि रोगध्नं
श्रीजयक्षमा पहारकम !
सर्व ज्वरादि साध्नं !
सूड़ देव नमाम्यहं !

व्याधि नाशकरं सर्व !
संसर्गा रोगना शनम !
कुष्ठादि दुष्ट हरणं !
सूड़देव प्रणमाम्यहं !

प्रस्तुत स्तुति धारावाले देव के पुजारी (डाऊ) की लिखित वंशावली से उद्दृत है अतः संस्कृत के शब्द शुद्ध न होने का कारण स्थानीय उच्चारण में ढ़ल गई है। भक्त एवं विद्वान स्वयं भाषा का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं।

देव धारावाले का स्तुतिगान

कोट कमोलो रा टीका देवा
राणी – पहाड़ बन्तीये जाया !

कोट कमोले तेरे कल्याणे तेरी चौंरी बणाई
मोटे – मोटे खाडू – बाकरे फाटे, चिंजण पाई रसोई

कोट कमोलो ते सूरत धाई
सेरी रे घाटे आया !
सेरी रे घाटे तेरे कल्याणेया तेरी चौंरी बणाई
मोटे – मोटे खाडू – बाकरे फाटे, चिंजण पाई रसोई !

सेरी रे घाटे ते सूरत धाई
जाडुवे चौंरी आया !

मोटे – मोटे खाडू – बाकरे ....
जाडुवे चौरिया ते सूरत धाई
सौंवे कण्यारे आया ....
मोटे – मोटे खाडू – बाकरे .....
सवें कण्यारों ते सूरत धाई
अर्की पौलिया आया !
तेती डेरा रचाया !
मोटे – मोटे खाडू – बाकरे ....

ऐतिहासिक स्रोत

प्रबन्ध चिन्तामणी - मेरूतुंग के अनुसार यद्यपि जगदेव को गुजरात के सिद्धराज जयसिंह द्वारा सम्मानित किया गया था, परन्तु शीघ्र ही उसे विख्यात राजा परमर्दिन ने कुन्तल देश आने का निमन्त्रण दिया। जगदेव ने निमन्त्रण स्वीकार किया। कुन्तल देश गये। परमर्दिन कल्याणी राज्य का राजा था जिसे 'विक्रमादित्य' के नाम से जाना जाता था। परमर्दिन के उस समय धार (मालवा) के राजा उदयादित्य से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे क्योंकि उसने कुन्तल राज्य के उदयादित्य द्वारा हथियाये और शासित क्षेत्र पर अतिक्रमण कर दिया था।

परन्तु इस विवरण के अनुसार जगदेव की विरूदावली के साथ उसके भाई सिन्धुपाल का नाम नहीं मिलता । यह व्यावहारिक और संगत भी नहीं लगता कि उदयादित्य के शासन काल में जगदेव ने धार छोड़ी हो क्योंकि उदयादित्य सिद्धराज जयसिंह के गद्दी संभालने से पहले स्वर्ग सिधार चुके थे और जगदेव ने 52 वर्ष धार पर राज किया।

यह तथ्यों से मेल नहीं खाती। मेरूतुंग द्वारा यह काव्यमय वर्णन लगता है।

जगदेव द्वारा महाकाली को शीश दान देने की घटना

जगदेव ने जगदम्बा 'महाकाली' का कठोर तप किया था। जगदेव को देवी 'कंकाली' ने माया और छल द्वारा दान के रूप में उनका सिर मांग लिया था। यह एक धार्मिक अनुष्ठान के समय की घटना है। कंकाली जगदेव द्वारा अपने पुत्र पर आक्रमण के बदले ऐसा दुस्साहस कर रही थी। कंकाली का पुत्र दुष्ट कलुआ था। यद्यपि जगदेव की पत्नी ने बिना आंसू बहाए रक्त पिपासु कंकाली को सिर भेंट करने को राजी हो गई थी।

अन्ततः कालिका देवी (माया) ने जगदेव के सिर को पुनः उनके शरीर में स्थापित कर दिया था और पुनर्जीवित कर दिया था। इस पूर्व परीक्षा से वीरमति ने देवी की सच्ची भक्ति होने का सफल प्रमाण दिया था। देवी ने उसे अपना असली उदेश्य बताकर उसे पुत्री के रूप में स्वीकार किया। माना जाता है कि राय जगदेव की वंशावली के सभी

राजाओं के सिर थोड़े झुके हुए होते हैं। इसका कारण इस घटना से जोड़ा जाता है।

जगदेव की समाधि 'धार में'

मालवा (धारा राज्य) के भट्ट-ब्राह्मणों ने पराक्रमी जगदेव परमार के पराक्रम, युद्ध अभियानों एवं वंशावली का अपने लोकगीतों, कविताओं और स्तुतियों में किया है। यह वीर हिमाचल एवं राज स्थान के गुग्गा जाहर पीर की तरह पूजा जाता है। भक्त घर-घर जाकर जगदेव के गीत गाते हैं।

उनके स्वर्गारोहण के विषय में एक गीत में वर्ष एवं दिन वार वर्णित है- 'ग्यारह सौ इक्यावन, चैत सुदी रविवार जगदेव शीश सौंपियो धारा नगर पवार।'

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जनसाधारण पराक्रमी जगदेव परमार को धार का स्वाभाविक एवं पारम्परिक उत्तराधिकारी मानता था, क्योंकि वह तत्कालीन सुप्रसिद्ध महाराजा जय सिंह गुजरात जो चालुक्यों का सरताज था, के पास सेनापति के रूप में अनेक विजयें प्राप्त कर चुका था। युद्ध क्षेत्र में वह अपने कौशल का सिक्का जमा चुका था। इसीलिए जयसिंह ने जगदेव को अपनी बेटी व्याह दी थी। इस बेटी का नाम था-'वीरमति'।

अन्ततः धारा की अधिष्ठात्री देवी काली के मन्दिर में मृत्यूपरांत जगदेव की समाधि बनाई गई जो आज भी वर्तमान है। जगदेव परमार के देहावसान की तिथि कहीं भी अंकित नहीं मिलती। ऐसा लगता है कि जगदेव की मृत्यूपरांत उनकी अस्थियां धारा नगरी लाई गई।

सेरी घाट में देव धारा वाले की स्थापना

जनश्रुति है कि 14वीं शताब्दी में जब बाघल रियासत के संस्थापक अजय देव पंवार सेना सहित अर्की में आये थे, तो उनके साथ उनके भाई विजय देव और मदन देव भी थे। मावी सरदारों को हराने के पश्चात अजय देव बाघल के मौजा डमरास, दाड़ला घोघर में आबाद हुए

जहां से उनके पुत्र ने कुछ समय पश्चात राजधानी को धुन्दन बदला। दूसरा भाई विजय देव सैनिकों के साथ सोलन के बस्सी क्षेत्र में बसा।

यद्यपि ऐतिहासिक दस्तावेजों में पंवार वंश के उस नींव डालने वाले शासक का कहीं विवरण नहीं मिलता। संभव है कुछ समय पश्चात विजय देव मृत्यु को प्राप्त हुआ हो और वसंत पाल नाम के शासक ने सत्ता संभाली हो। किन्तु जन श्रुति कहती है कि विजय देव ने बघाट की स्थापना की थी। तीसरा भाई सिरमौर क्षेत्र में कहीं काबिज हुआ, लेकिन कुछ समय पश्चात किसी लड़ाई में मारा गया, अतः उसका विवरण ऐतिहासिक स्रोतों में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। लगता है यही तीसरा भाई मदन देव सेरीघाट क्षेत्र में किसी लड़ाई में मारा गया होगा, जहां इसकी समाधि बनाई गई होगी। इसके वंशजों ने इस स्थान पर अपने पूर्वज महाक्रमी जगदेव पंवार की समाधि मन्दिर बनाया, क्योंकि जगदेव देवता के रूप में इस वंश द्वारा शासित रियासतों में देवता की तरह पूजे जाते थे। वैसे भी जहां पर किसी विशेष व्यक्ति की दुर्घटना या युद्ध में मृत्यु हुई हो वहां किसी देवता काली, दुर्गा, शिव, हनुमान अथवा पितृ देवता की स्थापना की जाती है। यह भी संभव है कि अंतिम दिनों में जगदेव पंवार ने यहां मुक्ति प्राप्त की हो।

बाघल रियासत के शासकों ने कुनिहार के कुछ क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था, इसी प्रकार क्योंथल का मैहली परगना तथा धामी रियासतों के क्षेत्रों पर अपना अधिकार किया था, अतः इन रियासतों के लोग पंवार वंश के इस पितृ देवता को अपना नहीं मानते थे। न ही पूजते थे। यह सर्वविदित प्रमाण है कि प्राचीन रियासतों के शासकों राणा, ठाकुर, एवं रजवाड़ो के अपने-अपने पितृ देवों अथवा कुल-इष्टों के देवस्थल स्थापित किये गये। दूसरी रियासतों के पितृ देवों को कहीं भी प्रमुखता नहीं मिली है। जगदेव परमार एक बलशाली श्यामल, गठीले एवं निनम्र योद्धा थे। अनेक राजाओं ने इन्हें अपनी कन्याएं विवाह में प्रस्तुत की थीं, अतः दन्त कथाओं में इन्हें स्त्रियों का प्रेमी कह दिया गया।

4
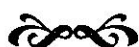
नारसिंह वज़ीर : बावन वीरों का सरदार

नारसिंह देव पौराणिक नृसिंह अवतार का रूप नहीं, वरन् हिमाचल का एक सुप्रसिद्ध लोक देवता है। हिमाचल के अधिकांश क्षेत्रों में नारसिंह वीर एक शक्तिशाली आध्यात्मिक वीर माना जाता है। यह बावन वीरों का सरदार है। यह ब्राह्मण वेश में श्वेत वस्त्र धारण किए, माथे में सिंदूर लगाए, कानों में मोतियों के कबुंडल, गले में मोतियों की माला पहने अर्द्धरात्रि को ठीक बारह बजे खड़ाऊं की पदचाप में निर्जन स्थानों में घूमता - फिरता रहता है। नारसिंह देव नृसिंह अवतार से कोई साम्य नहीं रखता, वरन् यह राजा नारसिंह है जो धारा वाला देव (जगदेव परमार - 11वीं सदी) के साथ कोटकमोल नामक स्थान से आया तथा धारा वाला देव का वज़ीर भी माना जाता है इसीलिए इसे 'वजीर' कह कर पुकारा जाता है। यह वीर गुग्गा क्षेत्र का वज़ीर था जो राजस्थान का एक राणा माना गया है। ये सभी देव ऐतिहासिक पुरूष हैं तथा समकालीन हैं, जिनकी पूजा - अर्चना सदियों से की जाती है। नारसिंह लंका के कोट किले से विजय प्राप्त करता आया है। इसने कोई विवाह नहीं किया। यह ब्रह्मचारी है किंतु इसे अपने कठोर पराक्रम तथा विजय अभियानों से यह वरदान प्राप्त है कि यह जिस भी अंगना या सुंदरी को चाहे, उसके शरीर में वास कर सकता है और आध्यात्मिक रूप से उसके साथ खेल - क्रीड़ा कर सकता है।
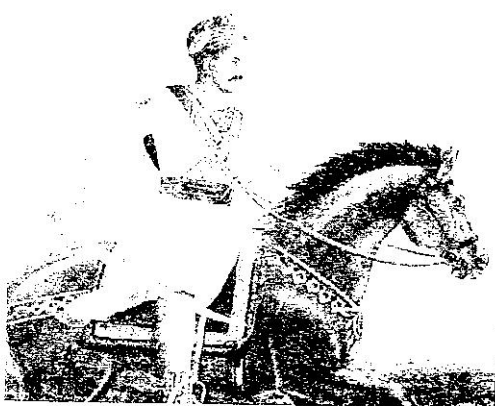
धारा वाला देव के वज़ीर के रूप में 'डाऊ' (चेले) इसकी स्तुति इस मंत्र द्वारा करते हैं। **'लंका सा कोट समुद्र की खाई, हनुमान की**

चौकी, रामचन्द्र की दुहाई।'

आदेश गुरूनाम:
शशिपाल का अजयपाल
अजयपाल का गजपाल
गजपाल का अब, अब का कब:
कब: का काशव, काशव का शूरबीर
शूरबीर का नारसिहं।
राजा नारसिंह वीर, माता संदावलिया का बेटा
अच्छर बहन का भाई, अखाड़े का सरदार
परियों का अगवानी, उद्धोनाथ का चेला
बांका वीर अलबेला।..........
नील का कील, कील का बहुड़ा
परिया साथ आया
चौसठ परिया, बावन वीर काछड़े साथ लाया
कोट कमोलो ते आया, परिया दा कटवाल
'सा' फूंकते आया, नारसिंह मार - मार करता आया
सवा मण धूप जलाया, माथे सिंदूर चढ़ाया
कान - गले रूंड - मूंड की माला, पैरे खड़ाऊं,
मलाल के ज़ंजीर आया
हंसते - खेलते आया, रमते - गाते आया
नारसिंह नलिहर नाऊण मिलेया
लंका सा कोट समुद्र की खाई
हनुमान की चौकी श्री रामचंद की दुहाई।

इस देव वंशावली से ज्ञान होता है कि नारसिंह का सम्बन्ध कोट कमोल, लंका विजय आदि से है जो उसने धारा वाला देव (जगदेव परमार (12वीं शताब्दी) के साथ रह कर प्राप्त की थी। वंशावली में रावण के पुरखों के नाम भी मिलते हैं - इससे लगता है कि संभवत: यह ब्राह्मण है जो वीरता

के कारण 'सिह' कहलाया। आगे वंशावली में 52 वीरों में से कुछ नाम इस प्रकार हैं:

"कौण - कौण वीर तेरे साथ चले?
रोपड़ा वीर तेरे साथ चले, भोषाड़ा वीर तेरे साथ चले
मकाड़ा वीर तेरे आगे चले
जलभूत, कैलू वीर, जोहारिया, बाऊन, गोरा, भूरा
संधूरिया, कपूरिया, लम चूरिया, चंच्याला
वशेलू, अंकटडिया वीर, गूंगा, चूरिया, हींगला
गीलड़ा, चपड़ा, भज्याया, खादाखल्वाया
सारे वीर तेरे साथ चले
हनुमान वीर तेरे आगे चले।"

ये नाम देव की प्रशंसा में वीरों की विशेषताओं से संबंधित उपनाम हैं, वास्तविक नाम नहीं। वास्तविक नाम कुछ और होंगे। मूल वंशावलियां आज अनुपलब्ध हैं। नारसिंह वीर वेश में तेरह बाण चलाते हुए आते हैं:

पहले बाणे क्या ल्याया? माथे सिंदूर ल्याया।
दूजे बाणे क्या ल्याया? पैर खड़ावां ल्याया।
तीजे बाणे क्या ल्याया? तीन त्रिलोक ल्याया।
चौथे बाणे क्या ल्याया? चार वेद को ल्याया।
पांचवे बाणे क्या ल्याया? पांच पांडव को ल्याया।
छटे बाणे क्या ल्याया? नारायण को ल्याया।
सातवें बाणे क्या ल्याया? सप्तर्षि को ल्याया।
आठवें बाणे क्या ल्याया? अष्ठ भैरव को ल्याया।
नौवे बाणे क्या ल्याया? नौ नाथ को ल्याया।
दशुवें बाणे क्या ल्याया? दशभुजा देवी तेरे साथ चले।
ग्यारवें बाणे क्या ल्याया? ग्यारह रूद्र को ल्याया।
बारवें बाणें क्या ल्याया? ब्यास पंडत तेरे साथ चले।
बूंजा वीर, चौंसठ जोगणियां, चौरासी सिद्ध तेरे साथ चले।

कौण - कौण परी तेरे साथ चले ?
स्याह परी, सफेद परी, हिंगला परी, पिंगला परी
नारदा परी, शारदा परी, जोगणी परी, नाहणी परी
हंता परी, कुंता परी, संधूरा परी, कपूरा परी
लाई परी, लगाई परी, भेजी परी, भज्याई परी
गिली परी, मलाई परी, खलाई परी, गीलड़ी परी
चिपड़ी परी, गूंगी परी, बावली परी
सब परियां तेरे साथ चले।.........
ख्वाजे के साथ जल जोगणी कहाइया
सिद्ध चानो के साथ बलिया मनाइया
गुरु के साथ सिल्खणिया मनाइया
इन्द्रराजे के साथ अच्छरा कहाइया
देवराज के साथ परियां मनाइया
राजे नारसिंह के साथ मानृया कहाइया।

इस व्याख्यात्मक स्तुतिगान से मध्यकालीन ऐतिहासिक राजाओं तथा तत्कालीन जन मानसिकता का परिचय मिलता है। यह वंशावली न होकर देवता का स्तुतिगान है जिसमें तत्कालीन नाथों - सिद्धों और अन्य मान्य पौराणिक देवताओं से देव की साम्यता अभिव्यक्त की गई है। इस स्तुतिगान द्वारा देव को संक्रांतियों के दिन पूजा - अर्चना के साथ बकरे या भेड़ू की बलि देने का रिवाज है। स्त्रियों के खोट - दोष के निवारण हेतु 'खेल' (देवक्रीड़ा) करवाई जाती है।

हिमाचल के बिलासपुर नगर में धौलरा में 'वज़ीर' का सुप्रसिद्ध मंदिर है। इसे 'बजीया' भी कहा जाता है। राजा दीपचंद 1650 ई0 ने धौलरा के स्थान पर इस देव का मंदिर निर्मित किया था। राजा दीप चंद की दो रानियां थीं - एक जलाल देई जो मांडू से थी, दूसरी कुंकुम देवी जो कूल्लू से थी। जब दीपचंद की बारात कुल्लू से लौटने लगी तो रानी की डोली कहारों से न उठाई गई। कहारों ने कहा 'महाराज, रानी की डोली तो हिमालय से भी भारी हो गई है। तब राज पुरोहित ने कहा कि देव क्रुद्ध हो गए हैं। यह देव नारसिंह ही था

जो रानी को बहुत चाहता था। महाराज कुल्लू ने पूछा – 'क्या चाहते हो देव? राजकुमारी के अन्दर निहित देव ने पुरूष वाणी में कहा – मैं राजकुमारी के साथ जाना चाहता हूं।'

कुल्लू नरेश ने आज्ञा दी – 'जाओ'। देव का सारा शरीर वहीं रह गया और पांव कहलूर आ गए। इसीलिए धौलरा में इस ऐतिहासिक 'वीर के पांव चन्दनकाष्ठ की चौकी पर विराजमान हैं।

सोलन, बिलासपुर, मंडी आदि क्षेत्रों में देवता के भजन इसको छमाही पर 'खेल' (देवपूजन – क्रीड़ा) के समय 'चेलो' द्वारा गाए जाते हैं:

"नलिहर नारसिंगा वीरा मेरेया
नरवर देश्शो दा राजा
माता संदावलिए जाया
अच्छरा पैणा दा भाई
पैरे तेरे रतिया खडावां
माथे सिंदूर दा टीका
नलिहर नारसिंगा वीरा मेरेया
बासा तेरा नाऊण पण्यारे
बासा तेरा शिंबलो रे डाले
रैंदा तू परिया रे मलरवाड़े।"

कुल्लू क्षेत्र में यह एक शक्तिशाली दैत्य माना जाता है। यह खंडहरों फूलों, कुओं, नदी तटों, पीपल और सेमल वृक्ष में इच्छानुसार निवास करता है। बच्चों और सुंदर स्त्रियों को विशेषकर दोपहर के समय अपनी ओर आकर्षित करता है और उन पर आसक्त होता है। इससे रक्षा के लिए नन्हें – मून्नों के माथे पर काला टीका लगा दिया जाता है। चंबा में नारसिंह को बाबा सिंडू' (पहाड़ियां) के नाम से जाना जाता है। यहां इसे गुग्गे के वजीर के रूप में पूजा जाता है। वास्तव में यह गुग्गे का समकालीन है।

चंबा के भरमौर क्षेत्र में नारसिंह की एक पीपल की मूर्ति मंदिर में स्थापित हैं प्राचीन रियासत सुकेत में भी नारसिंह का मंदिर है। राजा सुकेत की

ओर से 145 घुमाव ज़मीन जागीर के रूप में मंदिर को दी गई थी। पुराने समय में नारसिंह की मूल मूर्ति को देखने की अनुमति नहीं थी। कहते हैं कि जो देखता था वह या तो अंधा हो जाता था अथवा मर जाता था। मंडी में गुग्गे के मंदिरों में अन्य देवी - देवताओं के साथ इसकी मूर्ति स्थापित मिलती है। टूंडी गांव में भी नारसिंह का प्राचीन मंदिर है।

कांगड़ा में नारसिंह के अनेक मंदिर हैं। शाहपुर मंदिर में जन्माष्टमी के दिन मेले का आयोजन होता है। वैरागी पकाए हुए भोजन का भोग लगाते हैं। तीर्थो में नारसिंह के मंदिर का निर्माण आज से लगभग 250 वर्ष पूर्व उमेद चंद ने करवाया था। रेहलू में इसका भव्य मंदिर है। एक ब्राह्मण ने लगभग दो सौ वर्ष पहले यहां नारसिंह की मूर्ति स्थापित की थी। यहां प्रातः रोटी या उबाले हुए चावलों का भोग लगाया जाता है। झनियारा और फतेहपुर में भी इसके मंदिर हैं।

सिरमौर के राजगढ़ क्षेत्र में काटला, बांगी तथा शिलमिया गांवों में नारसिंह के सुंदर मंदिर हैं। सिरमौर में नारसिंह की माता का नाम चंद्रावती (संदावली संभवतः प्राकृत रूप) तथा पिता ब्रह्मा माना जाता है। इनके गुरू का नाम काशी और जन्म स्थान मुल्तानपुरी माना जाता है। प्रदेश भर में इसे 'साया' या छाया कह कर पुकारा जाता हे। नारसिंह के उपासक तुंबी बजाते हुए गाते हैं।

"मेरे नारसिंगा, निरंजनिया वीरा
वीरे ने मोही भोलियां, तीरे ने मोही भोलियां
वीरे मोही लिया जग सारा।
मेरे नारसिंगा, निरंजनिया जी
जित्थू कन्या कंवारिया तित्थू बासा तेरा
भई घर मथुरा बिच गोकुल लिया सो अवतारा।"

देव के बारे में यह विश्वास है कि यह संतानदाता और क्लेश निवारक है। इसके पुजारी तांबे की थाली में नारियल और चांदी रख कर मंगलवार को स्वच्छ जल से इसे धोकर पूजते हैं। इसे सिंदूर का टीका लगाया

जाता है तथा सुगंधित पदार्थ गूगल धूप, सफ़ेद सरसों आदि को पूजा में जलाया जाता है। देवता पशु बलि पसंद करता है।

हिमाचल के अर्की नगर में महल के पूजा गृह में इसकी प्राचीन मूर्ति है। महलों के सामने वाली टिब्बी पर देव का चबूतरा है जो धारावाला देव से संयुक्त है। इस वंश का पूर्वज धारा देव का वज़ीर जो ठहरा। अर्की क्षेत्र में प्रायः प्रत्येक घर में इसकी हर छठे महीने रोट - कड़ाह के साथ विधिवत् पूजा की जाती है। नारसिंह एक मध्यकालीन 'वीर' है जिसने तत्कालीन मालवा, पांचाल, विराट सिंहल तथा दक्षिण भारत में अनेक युद्धों में सेनापति के रूप में विजय प्राप्त की थी तभी इसे राजस्थान के गुग्गा क्षत्री (12वीं शती) और मालवा के जगदेव परमार का 'वजीर' माना जाता है। संभवतः यह वीर सेनापति के रूप में युद्धों में इनके साथ रहा। कुछ भी हो अपने पराक्रम और चरित्र बल से यह नवयुवती - ललनाओं के शरीर में प्रवेश के बावजूद भी प्रदेश भर में पूजा जाता है तथा अनेक मान - मनौतियों को पूरा करने वाला माना जाता है।

नारसिंह वजीर – ऐतिहासिक तथ्य

वंशावली स्तुति में नारसिंह को 'कोट कमोल' सिन्ध से आया हुआ बताया गया है। 11वीं शती के प्रारमभ में ही धारावाला देव (जगदेव परमार) 1040 ई. तक धारा नगरी में रहा था। वह भी कोट कमोल (सिंध) तत्कालीन मालवा के अधीन क्षेत्र का ही टीका कहा गया है। नारसिंह समीपवर्ती मुलतानपुरी का निवासी कहा गया है। महमूद गजनवी ने 11वीं शती के प्रारम्भ में इन क्षेत्रों पर हमले किए थे। गूग्गा छत्री की वंशावली में गजनवी के युद्ध का वर्णन भी है इस प्रकार धारावाला देव, नारसिंह और गुग्गा खत्री समकालीन माने जाते हैं जिन्होंने मुस्लिम आक्रमणों का सामना किया था किन्तु पूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके थे।

नारसिंह विद्वान तथा सुन्दर युवा वीर था जो महापराक्रमी जगदेव परमार (धारावाला देव) का मंत्री तथा सेनापति था। जब जगदेव ने धारानगरी छोड़ी तो उसने दक्षिण भारत को जीता तथा सिंहल द्वीप तक पहुंचा।

तत्पश्चात उत्तरी भारत के अनेक राज्यों को जीतता जम्मू - अख्नूर पहूंचा जहां उसने 52 वर्ष तक राज किया। उसके साथ नारसिंह अन्य 52 वीरों के साथ युद्ध - अभियानों में साथ रहा था। हिमाचल जम्मू, कूल्लू, कांगड़ा क्षेत्रों में तभी उसकी वीरता एवं चमत्कारों के कारण मृत्यूपरांत उसे देवता के रूप में पूजा गया। जनश्रुति है कि नारसिंह ने गुग्गा छत्री जो मारू देश का राजकुमार था, उसका मंत्री एंव सेनापति बनकर कई युद्ध किए थे तथा विजय प्राप्त की थी। इसीलिए नारसिंह को गुग्गा चौहान का मंत्री भी कहा जाता है। उस समय योद्धा दूसरे राज्यों में भी नौकरी करते थे। वास्तव में ये तीनों वीर समकालीन थे तथा मध्यभारत के अंतिम विजेता थे। 1192 ई. के पश्चात मुहम्मद गौरी के आक्रमण तथा मध्यभारत के तत्कालीन राजपूत राजाओं की हार के बाद कोई भी इनके प्रकार का योद्धा नहीं हुआ जिसने आक्रमणकारियों को पूरी तरह हराया हो। वे पलायन कर हिमाचल की तरफ आ गए थे और यहां छोटी - छोटी रियासतें बसा ली थीं।

5

दानोदेव-क्षत्रिय सम्राट सहस्रबाहु

प्राचीन साहित्य के अनुसार मानव की सुर तथा असुर प्रजातियां हिमाचली क्षेत्रों में निवास करती थीं। इसके अंचल में यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, किन्नर, अप्सराएं, देव और दानव निवास करते हुए धरती पर भी विचरण करते थे। इन्हें 'देवयानि' में गिना जाता था। ये स्वर्ग के अधिपति इन्द्र के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। 'सुर' देवों को और 'असुर' इन्द्र के यज्ञों का विरोध करने वाले लोगों को कहा जाता था।

पुराणों में सुर-असुरों के युद्धों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। रामायण-महाभारत काल में जो राजा देवताओं के विरूद्ध थे उन्हें पुराण काल में असुर, राक्षस, दानव, दैत्य, राक्षस नामों से पुकारा गया, यद्यपि वे क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि अन्य वर्गों के भी थे। वस्तुतः ये वैदिक परम्पराओं एवं कर्मकाण्ड के विरोधी थे तथा निरंकुश एवं अत्याचारी थे। हिंसक वृति होने के कारण इन्हें इन श्रेणियों में रखा गया था।

भारतीय परम्परा में वीरपूजा की परम्परा रही है अत: ये असुर आदि भी जनसाधारण के पूज्य रहे। कुछ सदगुणों के कारण तथा विष्णु अवतारों से लड़ने एवं पराजित होने के कारण इन पराक्रमी राजाओं के वंशजो ने अथवा जाति ने इन्हें पूजना शुरू किया और इन्हें 'देवता' का स्वरूप प्रदान किया।

हिमाचली क्षेत्रों में, विशेषकर हिमाचल प्रदेश में असुर राजा बलि, बाणासुर, सहस्रबाहु, हिडिम्बा बर्बरीक आदि के पराक्रम के कारण उन्हें 'देवता' का पद दिया गया। ब्राह्मण रावण को यद्यपि 'राक्षस' कहा गया तथापि उसके पराक्रम एवं विद्वता के कारण दक्षिण भारत में उसकी प्रजा ने उसे पूज्य स्थान दिया।

यही नहीं, वर्णाक्षम की कठोरता के बावजूद भी अनेक निम्न वर्ग के पराक्रमी एवं सन्त स्वरूप समाजसेवी पुरूषों को देवता के रूप में स्मरण किया जाने लगा। महाभारत कालीन योद्धा चाणूर जिसने कृष्ण से वीरता से युद्ध किया था और पराजित हुआ था उसे 'सिद्ध चानो' के रूप में हिमाचल में पूजा जाता है।

इसी प्रकार हेहैयवंश के क्षत्रिय राजा सहस्रबाहु को 'दानव' पुकारा गया। यही सहस्रबाहु अर्की, सुन्नी, सिरमौर, मण्डी, शिमला आदि क्षेत्रों में 'दानो देव' के नाम से पुकारा जाता है तथा सदियों से इसकी पूजा – परम्परा है।

सुरों, असुरों एवं राक्षसों की पूजा – परम्परा पितृदेवों अथवा जाति विशेष के पूर्वजों के रूप में प्रचलित है, किन्तु इसका विशेष कारण उनकी वीरता, पराक्रम, दानशीलता एवं समाज सेवा रहे हैं।

इसी प्रकार दानव, राजा सहस्रबाहु जिसे अर्की क्षेत्र में तथा सुन्नी क्षेत्र में दानों देव के नाम से जाना जाता है। 'परशुराम – सहस्रबाहु' यानी ब्राह्मण – क्षत्रिय सत्ता संघर्ष के पौराणिक आख्यान की स्मृति है।

पौराणिक संदर्भ

दानो देव की लोकगाथा मूल – रूप से सुन्नी – तत्तापानी में सतलुज नदी के किनारे गर्मजल के स्रोतों तथा देवस्थान से जुड़ी हुई है। यहां का

सम्बन्ध ऋषि जमदग्नि से जोड़ा गया है। लोक गाथा के अनुसार यमदग्नि की पत्नी रेणुका और सहस्रबाहु राजा की पत्नी वेणुका सगी बहनें थीं। एक बार सहस्रबाहु ने ऋषि यमदग्नि को अपनी राजधानी महीष्मतिपुरी में यज्ञ में उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया। रेणुका अपने पति के साथ यज्ञ में पहुंची तो उनके वैभव को देखकर अवाक् रह गई। ऊँचें - ऊँचें महलों, वेणुका के अमूल्य सोने - चांदी के गहनों तथा राजमहल की सुख - सुविधाओं को देखकर वेणुका का मन ईर्ष्या से भर गया। इस पर रेणुका अपने वैभव का बखान बड़े गर्व से करती रही।

रेणुका सोचती कि वह एक योगी ब्राह्मण ऋषि की पत्नी है जो आश्रम में कर्म - धर्म करते हुए जीवन बीता रही है। वह भी अपनी बहन रानी वेणुका को निमन्त्रण देना चाहे तो कैसें?

जब वह अपने पति के साथ लौटकर आश्रम में आई तो उसने अपने पति यमदग्नि से अपने मन की बात कही। जगदग्नि ने जब यह सुना तो बोले - ''प्रिय, मैं अपने यौगिक बल से सहस्रबाहु की सारी सेना और अतिथियों को महाभोज का प्रबन्ध कर सकता हूं।''

रेणुका बहुत प्रसन्न हुई। उसने निश्चित तिथि की सतलुज नदी के तट पर वेणुका तथा सहस्रबाहु को यज्ञ का आयोजन कर निमन्त्रण देने का निर्णय किया। उन दिनों ऋषि जमदग्नि हिमालय के रेणुका तीर्थ (सिरमौर) में आश्रम बनाकर निवास कर रहे थे।

एक दिन रेणुका ने अपनी बहन वेणुका को यज्ञ में आमन्त्रित कर ही दिया। रेणुका स्थान में पर्याप्त स्थान न होने के कारण यज्ञ का आयोजन वर्तमान सुन्नी क्षेत्र के सतलुज नदी के तट पर स्थित आश्रम में किया गया। यह क्षेत्र एक रमणीक प्राचीन देवस्थल था जहां एक राजा के अतिथ्य को भली - भान्ति प्रायोजित किया जा सकता था।

सहस्रबाहु तथा बेणुका इस निमन्त्रण से आश्चर्य - चकित थे। भला एक ऋषि एक महाराजा का सत्कार किस प्रकार कर सकता था?

सहस्रबाहु प्रसिद्ध राजवंश हैहेय वंश का राजा था जिसने भगवान शंकर के अंशावतार दत्तात्रेय की उपासना से वरदान से एक सहस्र भुजाएं प्राप्त की थीं। अतः वह अजेय बन गया था। सहस्रबाहु को अपने बल का बड़ा घमण्ड था। ऐसी एक घटना में उसने अहंकार पूर्वक दशानन रावण को पकड़कर कैद कर लिया था। भागवत पुराण के अनुसार एक दिन प्रातः जब रावण नदी के किनारे अपने इष्ट देव शंकर की पूजा में समाधि में बैठा था तो सहस्रबाहु नदी के निचले भाग में अपनी स्त्रियों संग जल - विहार कर रहा था। उसने नदी के प्रवाह को किसी तरह रोक लिया जिसके कारण रावण का पूजास्थल तथा डेरा पानी में बह गया। रावण भी कम शक्तिशाली न था। उसने सहस्रबाहु के सामने आकर उसे ललकारा । उसने रावण को बन्दर की तरह पकड़ कर बांध लिया और अपनी राजधानी में कैद कर लिया और कुछ दिन बाद स्वयं ही छोड़ दिया था।

इस विवरण से उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों के आपसी सत्ता - संघर्ष का पता चलता है। भागवतपुराण की इस कथा को लोकश्रुतियों में अपनी ही शैली में परिवर्तित कर सुनाया जाता है।

यज्ञ में निमंत्रण मिलने के पश्चात सहस्रबाहु पूरे सैनिक दल - बल के साथ यज्ञ - स्थल में पहुंचा। यज्ञ के विराट आयोजन को देखकर सहस्रबाहु हतप्रभ रह गया। उसकी तरह ही राजमहल, उपवन, सारी खाद्य सामग्रियां और सहस्रों ग्राम जन सेवक यज्ञ का कार्यक्रम आयोजित कर रहे थे। सहस्रबाहु को बहुमूल्य सिंहासन पर बिठाया गया। तरह - तरह की सामग्रियां जमदग्नि अपनी देवताओं से प्राप्त गौ जो समुद्रमंथन में देवताओं को मिली थी, उस गौ से प्राप्त हो रही थी। ऋषि ने राजा और समस्त सेना का अद्भुत सत्कार किया। इस प्रकार की सामग्रियां और पकवान तो वह भी नहीं जुटा सकता था। यह सब कामधेनु गाय का चमत्कार था!

सहस्रबाहु का मन ईर्ष्या और वितृष्णा से भर गया। उसने सोचा वह राजा होकर भी रंक है। वह सत्कार से सन्तुष्ट न हुआ।

उसने गर्व से अधिकारपूर्ण स्वर में ऋषि से कामधेनु गौ को भेंट में

मांगा और कहा कि उसके बदले वह कितना भी धन चाहे मांग ले। ऋषि ने विनम्रता से कहा ''राजन कामधेनु मेरी पूजा की गौ है और देवताओं की अमानत हैं मैं इसे देने में असमर्थ हूं।''

इस प्रत्युतर से सहस्रबाहु क्रुद्ध हो गया उसने सैनिकों को आदेश दिया कि बलपूर्वक गौ को छीनकर ले चलो। सैनिक गौ को घसीटकर महीष्मतिपुरी की तरफ ले जाने लगे। अचानक गौ उनके हाथों से छूटकर आकाशमार्ग से उड़कर देवलोक चली गई। इस क्षेत्र में किंवदन्ती है कि सहस्रबाहु ने जब आकाश में उड़ती गौ पर तीर बरसाए थे तो घायल गौ के रक्त के छींटे धरती पर पड़े थे जिन फसलों पर छींटे पड़े उन्हें स्थानीय लोग नहीं खाते, जैसे मसूर की दाल।

इसी मध्य जमदग्नि पुत्र परशुराम जो कहीं बाहर यात्रा पर गए थे कुछ सैनिकों के साथ वहां पहुंचकर उन्होंने सहस्रबाहु को ललकारा। सहस्रबाहु (कार्तवीर्य अर्जुन) की विशाल वाहिनी के साथ उनकी मुठभेड़ हुई। परशुराम ने अपने फरसे से कुछ समय में ही सहस्रबाहु की हजार भुजाएं काट डालीं और सारी सेना को मारकर मृत्युलोक भेज दिया। सहस्रबाहु का धड़ सिर से काट कर नदी में फेंक दिया।

परशुराम का रौद्ररूप देखकर राजा के दस हजार पुत्रों (सैनिकों) ने संभवत: सम्बन्धियों ने युद्धस्थल से भागकर जान बचाई। पुराणों के अनुसार परशुराम कामधेनु को साथ लेकर लौट आए थे। तत्पश्चात पिता की आज्ञा से सम्राट - हत्या के पाप से मुक्त होने के लिए वे बद्रिका तीर्थ यात्रा के लिए चले गए। एक वर्ष तक तीर्थों में भ्रमण करके वापिस आश्रम आए।

एक दिन परशुराम कार्य से जंगल में गए थे। महर्षि जमदग्नि अग्निशाला में बैठे तपस्यारत थे। अचानक सहस्रबाहु के पुत्र आश्रम में आए। अचानक उन दुष्टों ने ऋषि का सिर काट डाला और रेणुका का अपमान किया। रेणुका विलाप करने लगी। ''हाय राम - हाय राम।''

परशुराम जब आश्रम पहुंचे तो मां का रूदन सुना। पिता की दशा देखकर वे अपना दिव्य परशु लेकर सहस्राजुर्न के पुत्रों का पीछा करने

महीष्मतिपुरी पंहुचे। वहां उन्होंने राजा के हजारों पुत्रों को मार डाला।

कहते हैं ब्राह्मण द्रोह के कारण परशुराम ने अत्याचारी क्षत्रिय सेनाओं को इक्कीस बार परास्त कर मार डाला था। कहते हैं कि जमदग्नि की हत्या से दुखी रेणुका ने अपनी छाती में इक्कीस बार मुक्के मारे थे। अत: परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों से बदला लिया। बाद में तीर्थों में घूमते हुए यज्ञान्त स्नान करके वे हत्या से मुक्त हुए। अपने दिव्य ब्रह्मास्त्र परशु को अपने शिष्य द्रोणाचार्य को सौंपकर हिमालय की ओर चले गए।

इतिहासकारों के अनुसार उस काल में ब्राह्मण भी राजा बनते थे। यह लड़ाई भी दो राजाओं के सत्ता-संघर्ष को व्यक्त करती है। वास्तव में यह युद्ध दोनों तरफ की सेनाओं के बीच हुआ था। भारतीय इतिहास में ईसा की तीसरी शती तक ब्राह्मणों का राज भी चलता रहा। पहली शती के लगभग मनु ने राजपाठ क्षत्रियों को ही निर्धारित कर दिया था।

'दानो' शब्द 'दानव' का ही अपभ्रंश है। स्थानीय बोलियों में किसी पराक्रमी और साहसी व्यक्ति को भी पराक्रमी तथा अत्याचारी होने के कारण 'दानो' के नाम से अभिहित किया लगता है।

सहस्रबाहु की स्मृति दानोघाट मेला

सोलन जनपद के प्राचीन मेलों में अर्की के दानोघाट में आयोजित होने वाला दानाघाट मेला बाघल रियासत कि प्रारम्भिक शासकों (1640 ई.) से सम्बन्ध रखता है। यह मेला राजकीय स्तर पर मनाया जाता रहा है जो आज भी परम्परागत रूप से ज्येष्ठ मास की पन्द्रहवीं तिथि को धार्मिक आस्था के रूप में मनाया जाता है। शिमला - बिलासपुर मुख्य मार्ग पर शिमला से 30 कि. मि. की दूरी पर स्थित दानोघाट नामक स्थान पर यह मेला आयोजित होता है।

दानो देवस्थल दानोघाट में पुराने समय से एक विशाल पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर निर्मित है जहां देवता की प्रस्तर-मूर्तियों के साथ अन्य सहायक देवताओं की प्रस्तर मूर्तियां वर्तमान हैं। आज देवता के धातु के मोहरों के साथ देवस्थल का निर्माण किया गया है। दानोघाट मेले के अवसर

पर मंढोड़ देव का रथ मांगू गांव से सजी पालकी में भक्तों के समूह के साथ तथा चनावग गांव के शिखर पर स्थित हरशिंग देव की सजी पालकी भी मेले में पंहुचती है। आज कई देव पूजाएं बन गई हैं। लोग अपनी मनौतियों के अनुसार देवता को भेंट देते है। आज बलिप्रथा बन्द है।

दानोघाट - अर्की के अतिरिक्त दानोदेव का ऐतिहासिक मन्दिर सुन्नी में सतलुज नदी के बांयी ओर स्थित है जो चार सौ वर्ष पुराना माना जाता है। यहां प्रतिवर्ष बैसाख एवं संक्रान्तियों को देव - उत्सव होते रहते हैं। आज देवता का रथ - चक्र भी है। देवता मनौतियों के रूप में गांव - गांव पदार्पण करता है।

कुनिहार (अर्की) में ऐतिहासिक ताल के पास दोनों देव का प्राचीन मंदिर हैं जहां क्षेत्र के बड़े - बड़े अनुष्ठान होते रहते हैं। यह देव कुनिहार राजवंश का कुलदेवता है। कुनिहार का सुप्रसिद्ध मेला 'लाहल' मेला भी इसी के प्रांगण में आयोजित होता है।

परम्परा में राजा को 'देवता' माना गया है अत: प्रत्येक समाज ने अपने वंश प्रमुख को देवता माना है तथा समाज ने राजा को पूजना प्रारम्भ किया। राजा में ही दिव्य शक्तियों का स्वरूप समझकर उसे देवता बना दिया।

दानो मंदिर कुनिहार

6

गुग्गा जाहर पीर : वरदानी योद्धा

युद्धवीरों में गुग्गा चौहान का नाम देवता के रूप में स्मरण किया जाता है। इनकी गाथा रामगाथा, पाण्डव गाथा एवं अनेक ऐसे ऐतिहासिक नायकों की तरह हैं जिन्हें सौतेली माताओं की वजह से अपना राज्य छोड़ना पड़ा था। त्याग के कारण और शूरवीरता के कारण इन्हें 'देव' का पद मिला। इनकी पूजा अर्चना राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश में सभी हिन्दू तथा मुसलमान गुग्गा मढ़ियों पर जाकर श्रद्धापूर्वक मनौतियों के रूप में करते है। यह साम्प्रदायिक एकता का प्रतीक भी है। इनकी जन्मस्थली राजस्थान के चुरु जिला में ददेरवा नाम से तथा पूजास्थली समाधि मंदिर, 'गोगा मेड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये तहसील मादरा जिला गंगानगर के सन्निकट स्थित है।

गुग्गा पीर को जनमेजय का अवतार माना जाता है। इसी कारण इन्हें सर्पों का देवता कहा जाता है। इस संदर्भ में इन्हें 'जहर पीर' अर्थात ज़हर का देवता भी कहा जाता है। हिन्दू इन्हें 'गोगा-गुरु' के रूप में तथा मुसलमान 'गोगा पीर' के रूप में श्रद्धा-सुमन अर्पित करते है।

राजस्थान में 'बागड़ देश' की वजह से 'बागड़ वाला' कहते हैं।

प्रसाद - रूपी गुग्गल की वजह से इन्हें 'गोगाल वीर' भी कहा जाता है। जौहर अर्थात वीरता के कारण इन्हें 'जाहर वीर' भी कहा जाता है। वैसे 'पीर' का अभिप्राय है सिद्धिप्राप्त सन्त या चमत्कारी साधु। इनकी कथा नाथ पंथ के 'योग पंथ' में वर्णित मिलती है।

गुग्गा जाहर पीर की 'गुग्गा माड़ी' हिमाचल के सपाटू में जिला रोपड़ के निवासी वाल्मीकि गुज्जर और उसके भाई छित्तर ने 1860 ई. में स्थापित की थी।

11 वीं शती के वीर राजस्थान के गुग्गा चौहान की वीरता की लोकगाथा हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की तरह सोलन जनपद में सप्तमी तिथि से दशमी तिथि तक सपाटू मंदिर मैदान में आयोजित होती है। रक्षाबन्धन के दिन से ही गुग्गा भक्त मंडलिया बनाकर तांबे का त्रिशूल, छतरी, छड़ी, नाग आदि पूरे मास घर - घर जाकर घुमाते हैं। गुग्गा की गाथा के हिमाचल में विभिन्न पाठान्तर मिलते हैं किन्तु मूलभाव एक ही है। गुग्गा की माता बाछल सरसावा के राजा कंवरपाल की पुत्री थी। उसने गुरु गोरख नाथ की 12 वर्ष तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर गोरख नाथ ने उसे अभिमंत्रित करके गुग्गल दिया, उसके प्रभाव से 5 बन्ध्या माताओं ने पांच वीर पुत्रों को जन्म दिया बाछल से गुग्गा, पुरोहितानी से नरसिंह पांडे, दासी से मंजू वीर, मेहतरानी से रत्नरवीर और बन्ध्या घोड़ी से नीलाम्बर वीर का जन्म हुआ। इन पांचो वीरों का सनातन धर्म और गोरखनाथ तथा यवन राजाओं से संग्राम हुआ जिसमें नीलाम्बर को छोड़कर सभी वीरगति को प्राप्त हुए। अंत में गुग्गा ने गोरखनाथ के प्रभाव से नीले घोड़े सहित धरती में समाधि ली।

राजस्थानी गाथा के अनुसार गोगा पीर का विवाह असम में कामरूप के राजा की बेटी सीरियल से हुआ था जो गोरखनाथ के आशीर्वाद से उत्पन्न हुई थी। उनकी मौसी काछल का विवाह ददेरवा में ही हुआ और उनसे अर्जुन और सुरजन नाम के दो पुत्रों ने जन्म लिया। युवा होने पर वे गुग्गा जी से वैर रखते थे। जब उनसे विवाद हुआ तो वे महमूद गजनवी की शरण में चले गए। गजनवी ने गुग्गा को प्रभावित करने की कोशिश की किन्तु गुग्गा की वीरता और चालाकी से उसकी एक न चली। उसके दोनों भाइयों ने उनकी पत्नी से

दुर्व्यवहार किया तथा राज्य हड़पने की दृष्टि से गुग्गा से युद्ध किया। फल स्वरूप गुग्गा ने दोनों का वध कर दिया। इससे नाराज होकर बाघल ने उसे देशनिकाला दे दिया।

एक अन्य गाथा क अनुसार आछल, काछल और बाछल राजा इन्द्र के अखाड़े की परियां थी, जिन्हें शापवश मृत्युलोक में आना पड़ा। दिल्ली के रायपिथौरा नामक बादशाह ने जंगल से उठाकर उनका पालन-पोषण किया। काछल और बाछल की शादी राजस्थान के दो राजाओं से कर दी। आछल की कहीं और। कई गाथाकार काछल और बाछल को मारू (राजस्थान) के राजा ज्योर के साथ व्याहना मानते हैं। ज्योर के कोई सन्तान न थी अत: सन्तान हेतु बाछल ने गुरू गोरखनाथ की भक्ति की। जब वे बाछल को सन्तान हेतु फल देने के लिए मारू देश आए तो फल की प्राप्ति धोखे से काछल ने प्राप्त कर ली। जब गोरखनाथ को पता चला तो उन्होंने विष्णु भगवान से फल लाया और बाछल को दिया जिससे पराक्रमी गुग्गा का जन्म हुआ।

राजस्थानी गाथा के अनुसार राजस्थान में खण्डनामा नाम का राजा था। उसने पृथ्वीपाल नामक राजा की दो कन्याओं काछल और बाछल से शादी की। बाछल ने सन्तान हेतु गोरखनाथ की भक्ति की, किन्तु फल प्राप्ति पर उसका फल धोखे से काछल ने खा लिया। जब गोरखनाथ को पता चला तो उन्होंने काछल को पुत्रोत्पति के बाद मरने का शाप दिया। बाछल को पुन: पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया जिससे गुग्गा पैदा हुआ।

गुग्गा के पिता ने गुग्गा को राज्य का उत्तराधिकारी मनोनीत किया। किन्तु राजा के मरने के बाद गुग्गा के भाइयों अर्जुन-सुरजन ने राज्य हड़प लिया। अत: उनका परस्पर घोर युद्ध हुआ जिसमें गुग्गा की विजय हुई। वह वासू की नाग का पुजारी था अत: वासुकी ने अपनी कन्या का विवाह गुग्गा से करवा दिया और वरदान दे दिया कि सिर कट जाने के बाद भी वह लड़ता रहेगा।

गुग्गा-गाथाओं से कुछ तथ्य सामने आते हैं-गुग्गा राजस्थान के किसी क्षेत्र का राजा था। उसने अपने भाइयों और मुसलमानों से 10-11वीं

शती के समय युद्ध किए थे। वह योद्धा था। सौतेली माता तथा भाइयों से उसका संघर्ष राज्य के लिए कौरव - पांडवों की तरह हुआ था। वीर एवं त्यागी होने के कारण मृत्यु के पश्चात उसे देवता की तरह पूजा गया। यह भी एक तथ्य है कि मुगलों के आक्रमणों के पश्चात पराजित राजपूतों ने अपने अन्तिम पूर्वज को देवता का स्थान दिया है। जगदेव परमार, कुरगण देव तथा अनेक हिन्दुओं के अवतार इसी प्रकार जातीय इष्ट बन गए हैं।

गुग्गा - गाथा को लोकगायक गुग्गा नवमी को रातभर बड़ी तन्मयता एवं भक्तिभाव से गाते हैं। गाथा में स्थानीय भाषा एवं काव्यात्मकता स्वत: ही समाहित हो गई है।

गुग्गा के विवाह का ऐसा वर्णन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है जो गुग्गा के विवाह से सम्बन्धित है तथा उसकी बहन गुगड़ी उससे मंहगी भेंट मांगती हैं तथा गुग्गा उसके शस्त्र मांगने पर उत्तर देता है -

'' क्या देऊँ नाइया, प्रौहतां जो, क्या देऊँ बैहणी जो बधाई
मुहरा नाई प्रौहतां जो, चादर चोली बैणी जो बधाई।''
''चार चोली भाइया घरे राख्या, ए नी लणी मां बधाई''
''गौ - भइयां तेरे घरे बथेरीयां, दस तू क्या लैणी बधाई''
सुइना रूपा तेरे घरे बैहणी, दस तू क्या लैणी बधाई''
हीरे मोती तेरे घरे बथेरे, दस तू क्या लैणी बधाई''
क्या लेणी तु बधाई मेरीये बैहणें, तू मुहां ते दे गलाई''
जो तू दसे से देऊँ देऊंगा, तू इक बारी ले गलाई।''
''मारूए रा अद्ध लैणा मेरे भाइया, तू मारूए जो दे बंड़ाई
मारूए रा अद्ध तिज्जो देंगा, मैं कुति राज कमाणा जाई
मारूए रा अद्ध जो तिज्जो देऊं बैहणा, भाइयां भौ बंडाणा
छिन्न - भिन्न होंई जाणा सारा राज, किसी रा राज नी रैणा,''
गुगड़ी तब भाई से खण्डा मांगती है -
''खण्डा अपना कियां देऊं बैहणी, कल दुश्मणा मंज जाणा''
खण्डे मिसरिया घर रख अपणे, सूंकू नाग छुड़ाना''

''सुंकुए नागा कियां छड्डू बैहण, ए तां जुग्गा - जुग्गा रा बैरी
जे अज्ज छाड्डु एस जो बैहणी, कल्ला जो सिरा सामणे औणी।''
अप्पू तां भाइया तू व्याहणे चल्या, सूकु नाग नैं बन्धुआ पाया।
राजेया रे पुत्तर भाईया व्याहणे चाल्या चलदें,
नां सह चड़दे बन्धुआ छुड़ाई।''

गुग्गा तब सूंकू नाग को बारात में जाने से पहले छोड़ देता है।''
छूट्टे नागें कीत्ते खड़ाके, पद्धर खोलै पौंदे जादें।
सन्ना नदियां रे बेड़े डोबे, सूकूं उतरेया प्याला जाई
प्याल - पुरीयां छेड़ा पाइंयां सुत्ती रे नाग जगाए।
गुगमल राणा व्याहणे चल्या, चला आसां करनी लड़ाई.....''
''जे तू चल्या राणेया काहणे तां पहले कर तू असां ने लड़ाई
राणा हुक्मा करदा कौरूआं - भौरूआं, तुंसा नागा ने लड़ना जाई''
''कौरू - मौरू करन लड़ाईयां, गतले नागा रे कराए।
छम - छम बगदीया तिन्ना पर तलवारी रूरां रे नाल बगाए।

गुग्गा गोरखनाथ के वरदान से पैदा हुए थे। गुग्गा गाथा में अनेक प्रसंगों में गोरखनाथ उनके साथ रहते है। इससे यह तथ्य सामने आता है कि मृत्यु तथा देवत्व का स्वरूप बनने के बाद 11वीं शती में गुग्गा की पराक्रम गाथा के साथ गोरख नाथ का नाम जुड़ गया तथा गायकों ने उन दोनों को समकालीन मान लिया है। गाथा में धार्मिकता है अतः विभिन्न पाठान्तरों में काव्यात्कता के कारण अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलते है। आज भी गुग्गा मढ़ियों में गुग्गा के उत्सव आस्था एवं विश्वास से आयोजित होते हैं। गुग्गा के समय नाथ पंथ के साधुओं और गोरखनाथ का समाज पर बहुत प्रभाव था।

गुग्गा की बसौली (वंशावली) कांगड़ा क्षेत्र

लाख सहेले गुरू गोरख चेले बैठे आसण लाई
बारह तां बारह चौबी छूए मां बाछला सेवा कराई
उडदे तप धियाये जिव्हा चौके पाए।

लुणीया सिल्ला चट्टी धार कित्ते
सूने केसे वाहरीए तुं तां सेवा दे फल पाए
राजा मण्डलिक कच्चे धागे पाणी दी चूटीया
विसां दे निरमिस कीत्ते मियां घौलां की सांस पाए।
गर्भाशय बक्खवें गल्लां कीत्तियां
तां गुग्गे चौहान मण्डलिक कहाए।
खुल्लियां तणियां पैर प्यांदे देवराज मैहलां की आए
सद्द बुलाया बोलूं नागरची चोट नगारे पुआई
गढ़ दुधन्हेरें नौबत बज्जी बज्जी गूग्गे दी बधाई
दिल खुशियां बिच आई
भण्ड मरासी करन कल्याणां बज्जी गूगे दी बधाई
रल – मिल नारां मंगल गावन गूगे दी बधाई
अम्मां बाछल बन्ददी बधाइयां दिल खुशियां बिच आई
लोकी सारे करन कल्याण ब्राहम्ण सिरवाद बुलाई।
सद बुलाए सिरीखण्ड परोहित सद बुलाणे
गुरू गोरख मस्तक भभूत चढ़ाई।
पंज दिनां दा होया गुग्गा रास गणामण लाई
पडित बइयां बांचदे, पोथियां बांचदे, वाचन वेद – पुराणे
नानके चंगा दादके चंगा कुले की माड़ा नाईं
चार कूंट दा राज करना राजा ते की कमी नाईं
पहले पैहरे राजा मण्डलिक जन्में दूजे गूगड़ी जाई
तीजे पैहरे नीला रथ जन्मीयां चौथे कैला बच्छी जाई
चौने पैहरा चौरे जीव जन्में जग बिच रौशनी आई
गूग्गे दी मां अम्मा बाशल नीले रथ दी घोड़ी
जद तक्कर रैहण गुग्गा चौहान चारे चिंजा रैहणियां
जोड़ी टल बिच आई।''

7

गण देवता -रूद्रगण का स्वरूप

गण देवता हिमाचल प्रदेश का प्राचीन देवता है। यह शिवगण माना जाना है, किन्तु स्थानीय परम्पराओं के अनुसार यह नागगण के रूप में भी पूज्य है। हिमाचल क्षेत्रों में यह एकमात्र स्थानीय गणदेव है जिसका रथ - चक्र है। गणदेव का प्राचीन मन्दिर दाड़लाघाट के कोटला - पुजारी गांव में स्थित है। देवता का रथ फाल्गुन - चैत्र में रथ - चक्र के साथ मनौनियों के अनुसार घर - घर नृत्य करता है तथा परम्परानुसार पूजा जाता है। प्रत्येक छमाही पर लोग फसलों के आगमन पर इसे रोट - कड़ाह भेंट करते हैं।

गण देवता शिवजी के गणों में से एक देव है। इसके अष्टधातु के मोहरे मन्दिर में विराजमान हैं तथा देव - उत्सवों के समय रथ में सजाये जाते हैं। देव - मोहरों में गले में नाग, साथ में महाकाली की मूर्ति, जालपा का मोहरा और दरवाणी देव के मोहरे हैं। देवता का मन्दिर भले ही दाड़लाघाट के कोटला गांव में है, तथापि मूल - स्थान दाड़ला मुख्य - सड़क के किनारे निर्मित जालपा के मन्दिर के प्रांगण में प्रस्तर - मूर्ति के रूप में वर्तमान है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गण देवता का सर्वप्रथम मन्दिर बाघल - अर्की राजा के महलों के परिसर में निर्मित था। गणदेवता की मूर्तियों को दाड़लाघाट लाने के सम्बन्ध में लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जनश्रुति के अनुसार जब बाघल के राजा सभा चंद (1640 ई.) ने अर्की को राजधानी बनाया तो पूर्व निर्मित - स्थापित गणदेवता की मूर्तियों को यहाँ से हटाने का विचार बनाया। यह देव अर्की राजवंश का कुल देवता नहीं था। देवता का देवस्थल महलों के मुख्य द्वार (प्राचीन गौशाला) पर था। प्रारम्भ में राणा ने विद्वानों के गांव बातल से इसका पुजारी नियुक्त किया, किन्तु कहते है। कि एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई, यह क्रम चलता रहा। इसके बाद राणा ने भूमती गांव से इसका पूजारी नियुक्त किया, उसके साथ भी यही हुआ। राजा अब इस देवता को रियासत से बाहर निकालने पर विचार करने लगा। राणा ने बजीर को आदेश दिया कि इस देव को सतलुज के पार छोड़ दे।

कहते हैं राजधानी में एक दिन कोटला गांव का एक ब्राह्मण आया जो एक भक्त मालूम पड़ता था इस चलते - फिरते कोटला गांव के ब्राह्मण को देवता की पूजा के लिए कहा गया। वह मान गया, किन्तु उसने कहा कि वह इस देवता की मूर्तियों को अपने गांव ले जाएगा। राणा ने उसे स्वीकृति दे दी। उस ब्राह्मण ने देवता के मोहरों को परम्परा के अनुसार किलटे में (अथवा टोकरी) उठाया तथा अर्की से शकनी मन्दिर के रास्ते दाड़ला - घाट की तरफ चला। उन दिनों दाड़ला को धार परगना मे नाम से जाना जाता था।

जब यह ब्राह्मण शेरपुर गांव के पास पहुंचा तो उसने तत्कालीन अर्की - मांगल मार्ग को छोड़ दिया और दाड़लाघाट वाले मार्ग पर चलने लगा। वह कल्हारन गांव पहुचा। वह थक गया था। आराम करने और लघुशंका के लिए वह रूका। देवता के मोहरों को एक चट्टान पर रखा। लघुशंका से निवृत वह पानी के स्रोत पर गया। हाथ मुंह धोकर और सुस्ताकर जब वह देवता के किलटे को

उठाने लगा तो वह उठा न सका। देवता के अधिक भारी होने से वह आश्चर्य चकित हो गया।

कल्हारन गांव के लोग इकठ्ठे हुए। बाह्मण तथा गांव वालों ने देवता की पूजा - अर्चना तथा मनौती की। गांव वालों ने देवता की एक गुर्ज (लोहे की छड़ देवता का प्रतीक) स्थापित करने का निर्णय किया। तभी से अर्की धार के कल्हारन गांव में गणदेवता की स्थापना मिलती है।

इसके पश्चात ब्राह्मण ने देव - किलटे को उठाया और धार परगना की ओर चला। जब वह वर्तमान जालपा मन्दिर के पास पहुँचा तो उसने आराम करने के लिए टेकरी पर किलटे को रखा। फिर वही घटना हुई। जब ब्राह्मण आराम करने के पश्चात देवता के किलटे को उठाने लगा तो नहीं उठाया गया।

इस पर कोटला - नुमाला गांव के लोगों ने गण देवता के मन्दिर की स्थापना इसी स्थान पर करने का विचार बनाया। तभी से इस स्थान पर गण देवता तथा जालपा माता मन्दिर का निर्माण किया गया है तथा इसके पुजारी कोटला गांव से हैं। उसी समय अर्की राणा ने इस ब्राह्मण पुजारी को कोटला गांव में 'सासण' (भूखण्ड) प्रदान किया था जो इसके वंशजों के पास आज भी है।

देवताओं का यज्ञ और प्रजापति दक्ष

प्राचीन काल में सामाजिक एवं धार्मिक हष्टि से अन्न यज्ञ का विशेष महत्व रहा है। सारे ग्राम - नगर के लोग अन्न - यज्ञ में सम्मिलित होकर भाई चारे में बंधे थे। यज्ञ अन्न धन और दूध घी की सम्पन्नता का सूचक भी था। यज्ञ से सात्विकता का भाव तथा अहिंसा की प्रेरणा स्वतः ही मिलती थी। जो राजा जितना सम्पन्न होता, वह उतना ही बड़ा अन्न यज्ञ एवं दान करता था।

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में यज्ञों का विस्तृत वर्णन मिलता है। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के मानस - पुत्र दक्ष प्रजापति ने आर्यावर्त में एक

बहुत बड़ा यज्ञ का आयोजन किया था। किन्तु अहंकार के कारण शिवगणों ने उसे यज्ञ - सहित नष्ट कर दिया था।

शिव पुराण की कथानुसार पूर्वकाल में पुण्यतीर्थ प्रयाग राज में गंगा - यमुना - सरस्वति के संगम - स्थल पर समस्त ऋषि - मुनियों ने एक सामूहिक यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में ब्रह्मा, सनकादि सिद्धगण, देवर्षि, प्रजापति तथा देवता पधारे थे। सभा में नाना शास्त्रों के सम्बन्ध में ज्ञान चर्चा हो रही थी। उसी अवसर पर वहां भगवान रूद्र भी पहुँचे। भगवान शिव को देखकर सभी देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया तथा स्तुति की। इसी बीच प्रजापतियों के स्वामी दक्ष भी वहां पहुंचे। दक्ष उन दिनों समस्त ब्रह्माण्ड के अधिपति बनाये गये थे, किन्तु उन्हें अपने पद का बहुत अहंकार था। उनके आगमन पर सभी उपस्थित देवर्षियों ने प्रणाम किया तथा स्वागत में खड़े हो गए, किन्तु महेश्वर शिव ने दक्ष के सामने मस्तक नहीं झुकाया। इससे दक्ष बहुत क्रुद्ध हुआ तथा उसने शिव को अपशब्दों का प्रयोग किया। नन्दी के विरोध करने पर दक्ष ने उन्हें भी शाप दे डाला 'अरे रुद्रगणों, तुम सब वेद से बहिष्कृत हो जाओ।' शिव का अपमान सुनकर दधीचि एवं अन्य ब्राह्मण यज्ञ से चले गये। यज्ञ अधूरा रहा किन्तु इसके परिणाम स्वरूप दक्ष का विनाश परिलक्षित होने लगा।

दक्ष - यज्ञ और शिव का तिरस्कार

एक समय दक्ष ने एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उन्होंने समस्त देवताओं और ऋषि - मुनियों को बुलाया। यह यज्ञ हरिद्वार के कनखल - तीर्थ में हो रहा था। इसमें अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वायुदेव, भृगु, दधीचि, व्यास, भारद्वाज, गौत्तम, पैल, पराशर, गर्ग, भृगृ, ककुप, सित, सुमन्तु त्रिक, कंक और वैशम्पायन आदि ऋर्षि - मुनि अपनो कुटुम्बों सहित यज्ञ में सम्मिलित होने को बुलाये गये थे। इसके अतिरिक्त लोकपाल गण, और सभी 34 देवता अपनी सैन्य शक्ति के अनुसार वहां पधारे थे। ब्रह्मा भी

उपस्थित थे। विष्णु भी विशेष रूप से आमन्त्रित थे। यज्ञ-स्थल को विश्वकर्मा ने अत्यन्त दिव्यमान तथा भव्य बनाया था।

इस यज्ञ में दक्ष ने भृगु आदि को ऋत्विज बनाया। मरूद्गणों के साथ भगवान विष्णु उसके अधिष्ठाता थे। ब्रह्मा को वेदत्रयी विधि को बताने वाला बनाया गया। दिक्पाल अपने आयुधों के साथ द्वारपाल थे। वहां अठ्ठासी हजार ऋत्विज हवन करने लगे। चौंसठ हजार देवर्षि उद्गाता थे। अध्वर्यु एवं होता भी उतने ही थे। दक्ष ने महायज्ञ में गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, बारह आदित्यों, उनके गणों तथा नागों का बड़ी संख्या में वरण किया था।

इतना सब होने पर भी प्रजापति दक्ष ने उस यज्ञ में भगवान शिव को आमन्त्रित नहीं किया। दधीचि ने दक्ष से इसका कारण पूछा तो उसने शिव के प्रति अपमानजनक शब्द कहे-'विप्रवर, मैंने ब्रह्माजी के कहने से अपनी कन्या रूद्र को ब्याह दी थी। वैसे मैं जानता हूं, वह कुलीन नहीं है। उनके न माता है न पिता। वे भूतों-प्रेतों और पिशाचों के स्वामी हैं। अकेले रहते हैं। इस यज्ञ कर्म में बुलाये जाने योग्य नहीं है।'

दधीचि ने यह सब सुनकर यज्ञ-शाला से प्रस्थान किया उनके साथ दूसरे देवता मुनि भी निकल पड़े।

दक्ष-यज्ञ का समाचार पाकर सती ने शिव से दक्ष-यज्ञ में जाने का अनुरोध किया। दक्ष के शिवद्रोह को जानकर भगवान शिव ने सती को यज्ञ-मण्डप की ओर प्रस्थान की आज्ञा दी। यज्ञ शाला में शिव का भाग (स्थान) न देखकर सती ने रोषपूर्वक वचन कहे। दक्ष ने उसी प्रकार सती के सामने शिव का घोर अपमान किया।

पिता के शिव के प्रति कटु वचनों से दुःखी होकर सती ने वहीं यज्ञ-कुण्ड में अपने प्राण त्याग करने का विचार बनाया। सती मौन होकर शिव का स्मरण करके शान्तचित सहसा उत्तर दिशा में बैठ गई। विधिपूर्वक जल का आचमन करके वस्त्र ओढ़ लिया और आंखे मूंदकर योगमार्ग में

स्थित हो गई। योगमार्ग से पति का चिन्तन करते प्राणायाम से शरीर त्याग कर दिया। सती का पवित्र शरीर तत्काल गिरा और उनकी इच्छा के अनुसार योगाग्नि से जलकर उसी क्षण भस्म हो गया वहां उपस्थित देवताओं ने जब यह घटना देखी तो जोर से हाहाकार कर उठे।

उस समय शिव के पार्षद सती का अद्भुत प्राणत्याग देख तुरंत ही क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र लेकर दक्ष को मारने के लिए उठ खड़े हुए। अनेक पार्षद इतने व्याकुल हुए कि अपने ही शस्त्रों से आत्म दाह करने लगे इस समय बीस हजार पार्षद सती के साथ ही नष्ट हो गये। यह एक अदभुत घटना हुई। नष्ट होने से बचे हुए महात्मा शंकर के वे प्रथम गण क्रोधयुक्त दक्ष को मारने को दौड़े। उन्हें रोकने के लिए भृगु ऋषि ने यज्ञ में विघ्न डालने वालों का नाश करने के लिए नियत-'अपहता असुरा: रक्षांसि वेदिषद:।' यजुर्वेद के मंत्र से दक्षिणाग्नि में आहुति दी। आहुति देते ही यज्ञकुण्ड से ऋभु नामक सहस्रों देवता वहां प्रकट हुए। उनके हाथ में जलती लकड़ियां थी। उनका प्रमथगणों के साथ विकट युद्ध हुआ, किन्तु देवताओं ने उन्हें भगा दिया। विष्णु ने विघ्न को टालने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहे।

यह देखकर देवतादि वहां से प्रस्थान की सोचने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई-'समस्त देवता इस यज्ञ मण्डप से निकलकर अपने-अपने आश्रमों को चले जाएं अन्यथा सभी का नाश हो जाएगा।'

यह सुन देवतादि भयभीत हो गए। वे गणों सहित शिव के पास गये। गण बोले-महादेव, दक्ष बड़ा घमण्डी और दुरात्मा है। उसने देवों का भी अपमान किया हैं। यज्ञ में आपका भाग न देखकर सती देवी कुपित हो उठी और उन्होंने योगाग्नि द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया।''

उस घटना को सुनकर शिव ने रौद्र-रूप धारण कर लिया। रुद्र ने अपने सिर से एक जटा उखाड़ी और उसे रोषपूर्वक उस पर्वत पर दे मारा। भगवान शंकर के पटकने से उस जटा के दो टुकड़े हो गए और प्रलय के

समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। उस जटा के पूर्व भाग से महाबली- वीरभद्र प्रकट हुए जो शिव गणों के नायक माने गए।

उस जटा के दूसरे भाग से महाकाली उत्पन्न हुई। शिव के प्रमथगणों सहित वीरभद्र और महाकाली दक्ष यज्ञ के विध्वंस के लिए चल पड़े। भगवान शिव ने वीरों की शोभा बढ़ाने के लिए उनके साथ करोड़ो गणों को भेज दिया जो प्रलयाग्नि के समान थे। प्रथमगण वीरभद्र के आगे पीछे चल रहे थे। वीरभद्र रथ पर सवार आगे चल रहे थे। उनके एक सहस भुजाएं थीं। शरीर में नागराज लिपटे हुए थे। उनके रथ को सिंह खींच रहे थे। उसी प्रकार बहुत से प्रबल सिंह, शार्दुल, मगर, मत्स्य और हाथी रथ के पार्श्व भाग की रक्षा कर रहे थे। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्ड, मर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी इन नवदुर्गाओं के साथ समस्त भूतगणों के साथ महाकाली दक्ष के विनाश को चली।

डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुहयक, कूष्मांड, पर्पट, चटक, ब्रह्म राक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल सभी दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने चले। इसके अतिरिक्त चौंसठ गणों के साथ योगनियों का मण्डल भी कुपित होकर साथ चला।

इसी समय दक्ष के विनाश की आकाशवाणी हुई। वीरभद्र ने देवताओं को युद्ध के लिए ललकारा। विष्णु और वीरभद्र का युद्ध हुआ। वीरभद्र ने भगवान विष्णु के चक्र को स्तंभित कर दिया तथा शार्ग - धनुष के तीन टुकड़े कर डाले। तब विष्णु ने गणनायक वीरभद्र के असहय तेज से व्याकुल वहां से अन्तर्धान होने का विचार किया। वे विष्णुलोक चले गये। ब्रह्मा और विष्णु के चले जाने पर सभी वहां से पराजित होकर भाग गये। इस उपद्रव को देखकर वह यज्ञ - पुरुष भी भयभीत होकर मृग का रूप धारण कर वहां से भागा।

आकाश में उड़ते मृग को वीरभद्र ने पकड़ लिया और उसका मस्तक काट डाला। फिर उन्होंने मुनियों तथा देवताओं के अंग - भंग कर दिये। प्रतापी गण मणिभद्र ने भृगु को उठाकर पटक दिया और उनकी छाती को पैर से

दबाकर उनकी दाढ़ी - मूंछ नोच ली। चण्ड ने वेग से पूषा के दांत उखाड़ लिये। नन्दी ने भग को पृथ्वी पर दे मारा और उनकी आंखे निकाल ली।

वहां रूद्र - गणनायकों ने स्वधा, स्वाहा और रक्षिण देवियों की बड़ी किरकरी की। दक्ष भय के मारे अन्तर्वेदी के भीतर छिप गये थे। वीरभद्र ने उनका पता लगाकर उन्हें पकड़ लिया। फिर उनके दोनों गाल पकड़ कर उनके मस्तक पर आघात किया। परन्तु योग के बल से दक्ष का सिर अभेद्य हो गया था, इसलिए तलवार से न कट सका। जब वीरभद्र को ज्ञात हुआ, तब उन्होने दक्ष की छाती पर पैर रखकर दोनो हाथों से उसकी गर्दन मरोड़ दी और अग्निकुण्ड में डाल दिया। यज्ञ का विध्वंस कर कैलाश पर्वत की और चले गये।

गणदेव - रूद्र अवतार का स्वरूप

पौराणिक - साहित्य में दक्ष - यज्ञ में देवी सती का आत्म दाह व्यापक प्रभाव रखता है। समस्त हिन्दू - देवियों का उद्‌भव इसी महान घटना से सम्बन्ध रखता है। जनश्रुतियों के अनुसार जब सती ने आत्मदाह किया तो क्रुद्ध - रूद्र - रूप शिव ने सती की लाश को कंधे पर उठाया तथा चारों दिशाओं में उछाला वे मानवो चित शव - दाह संस्कार नहीं करना चाहते थे। हिमालय तथा उत्तरी भारत की मान्यताओं के अनुसार जब शिव ने सती को स्वर्गलोक की तरफ फेंका तो अनेक स्थलों पर उनके अंग प्रत्यंग पड़े। जहां सती का मस्तक गिरा वहां 'कांगड़ा देवी' 'ब्रजेश्वरी' की स्थापना हुई। जहां सिर गिरा वहां चामुण्डा देवी, जहां आंखों वाला भाग गिरा, वहां नैना देवी, जहां हृदय पड़ा वहां चिन्तपूर्णी और जहां जिव्हा वहां ज्वाला जी जंघा से त्रिपुरा में जयन्ती देवी, हाथ से हिंगला, अंगुलियों से कलकता की काली मस्तक के अग्रभाग दक्ष से मनसा आदि पवित्र देवी - स्थलों की स्थापना हुई। देवी के अंगों के गिरने सम्बन्धी ऐसे वृतान्त समस्त भारत के सुने जाते हैं तथा अनेक तीर्थों से देवी का सम्बन्ध बताया जाता है।

इसी घटना से सम्बन्धित शिवगणों का प्रसंग है, शिवगणों ने जिनकी

संख्या असंख्य बताई गई है, उनके नायक वीरभद्र की अगुआई में दल का संहार हुआ था, अतः रूद्रगण वीरभद्र एवं उनके प्रमुख बारह गणों को भारतीय जनमानस में विशेष देव - मान्यता मिली है। इन शिव - गणों में वीरभद्र के अतिरिक्त मणिभद्र चण्ड, नन्दी, भैरव आदि प्रमुख है। इन गणों को शिव - पार्षद भी कहा गया है।

हिमाचल प्रदेश के बाघल रियासत का प्रमुख देवता 'गण देवता' रहा है जो बाघल राजधानी अर्की बनने से पूर्व (1650ई) यह देवता अर्की राजमहलों के मुख्य द्वार के दायीं तरफ स्थापित किया गया था। राजधानी बनने पर अर्की नरेश ने इसे यहां से हटाने और रियासत से बाहर ले जाने का आदेश दिया था, इससे स्पष्ट होता है कि यह देवता अर्की राजवंश का कुल देवता नहीं था, वरन् बाघल रियासत से पूर्व इस देवता के स्थल की स्थापना किसी अन्य शासक ने की होगी। देवताओं के इतिहास एवं वंशावलियों से पता चलता है कि राजा विभिन्न रियासतों में दूसरे देवताओं की पूजा की अनुमति नहीं देते थे, यही कारण है कि बाघल के समीपवर्ती राणे - ठाकुरों की रियासतों में अपने - अपने देवी - देवता हैं। पितृ देवताओं के राजसत्ता के अनुसार मान्यता - क्षेत्र बन गये मिलते हैं। धारावाला देव, कुरगण देव, दानो देव, नारसिंह, बाड़ा देव, बाड़ू - बाड़ा देव, हरसंग आदि देवता इसी प्रकार कुछ सीमित क्षेत्रों के देवता बन गये हैं।

गण देवता को जब अर्की महलों से बाहर किया गया था तो इस देवता की स्थापना उस समय के धार - परगना - दाड़ला के कोटला गांव में की गई थी जिसके बारे में जनश्रुति प्रचलित है। कहते हैं जो सन्त - वेश में एक भक्त इस देवता को कोटला में लाया था, उसी के वंशज इस गांव में आज भी वर्तमान है। उसका विवाह यहीं गांव में आज भी वर्तमान है। उसका विवाह यही गांव में करवाया गया था तथा उसकी सन्तानें ही इसकी पुजारी बनीं। इस गांव का नाम इसीलिए ''कोटला - पज्यारा'' पड़ा। इस गांव के वंशज उस पूर्वज पुजारी को ही अपना पितर मानते है। देवता के रथ के साथ

इस सन्त - पुजारी का मोहरा रथ - यात्राओं में हमेशा रथ के पीछे लटकाया जाता है।

कोटला - दाड़लाघाट में गणदेवता मंदिर

कोटला - दाड़लाघाट का गणदेवता रूद्रगण कहा जाता है। जो शिव के सहस्रों गणों का नायक है। वीरभद्र की अगुआई में रूद्रगणों ने दक्ष प्रजापति तथा उसके सहयोगियों का वध किया था। अत: भारतीय जनमानस में रूद्रगण वीरभद्र देवता के रूप में पूजे जाते हैं। कोटला पज्यारा में देवता का मंदिर स्थित है। मूल मंदिर दाड़ला की मुख्य सड़क के किनारे निर्मित किया गया है।

मन्दिर में 12 गणों के अष्टधातु के मोहरे 16 वीं शती से यहां पूजा - अर्चना के साथ रथों में सजाए जाते हैं। तथा फागुन आयोजित होती है। प्रत्येक सक्रान्ति पर देवालय में समागम तथा भंडारा होता है।

कोटला मन्दिर साधारण पारम्परिक - शैली का शिखर शैली का मन्दिर है, जिसे आधुनिक रूप दिया गया है। मन्दिर परिसर में पर्वों - त्योहारों पर भजन - कीर्तन तथा पूजन होता रहता है।

मूल मन्दिर दाड़ला - कोटला मुख्य सड़क पर स्थित है। इसकी स्थापना बाघल रियासत से पूर्ववर्ती किसी शासक द्वारा की गई होगी। प्रारम्भ में यह ऊँचे चबूतरे पर लघु मन्दिर तथा खुले चौक पर स्थापित किया गया था। आज दो भागों (कक्षों) में इसमें देवी महाकाली (जालपा) तथा गण देवता की मूर्तियां विराजमान हैं जो वर्तमान स्थान मे बनाई गई हैं। बाहर चबूतरे पर पत्थर की गणदेवता तथा उसके सहयोगी शिव - गणों की मूर्तियां रखी गई हैं। साथ में दरवाणी अथवा भैरव की मूर्तियां स्थापित है।

वर्तमान में मन्दिर - परिसर को सुन्दर रूप दिया गया है। लघु सराय भी निर्मित की गई है।

चन्देल वंश का कुलदेवता

गणदेवता प्रमुखतः राजपूतों के चन्देल वंश का कुल देवता माना जाता है, किन्तु स्थानीय नुम्हाल ब्राह्मण भी इसे अपना – कुल इष्ट मानते हैं। गणदेवता के महत्व का इस बात से पता चलता है कि प्रत्येक चन्देल राजपूत (कनैत) के घर की रसोई में एक आले (अलमारी) में देवता की मूर्ति अवश्य रखी जाती हैं।

गण देवता के साथ महाकाली की मूर्ति अवश्य स्थापित मिलती है। महाकाली को स्थानीय भाषा में जालपा देवी कहा जाता है। जालपा के प्राचीन मन्दिर दाड़ला के अतिरिक्त छामला गांव, धुन्दन तथा रौड़ी गांव में स्थित है।

जालपा देवी (महाकाली) का मूल मन्दिर कहलूर (बिलासपुर) के ब्रह्मपुखर के पास सगीरठी गांव में स्थित है जिसे प्रारम्भिक – कहलूर नरेश द्वारा बनाया गया था। इस जालपा मन्दिर को सगीरठी देवी के नाम से ही जाना जाता हैं। कहलूर – राज वंश इसे अपनी कुलजा के रूप में मानता – पूजता है। कहा जाता है कि बिलासपुर के शासकों का धुन्दन तथा दाड़ला क्षेत्रों में कभी – कब्जा रहा था, तभी से यहां जालपा माता मन्दिरो का निर्माण शुरू हुआ।

चन्देल राजपूत चन्देरी (राजस्थान) से यहां आये थे अतः अपने ईष्ट शिवगण की मूर्ति को यहां स्थापित किया गया था। कालान्तर में जालपा देवी के मन्दिर दूर – दूर तक स्थापित किये गये। चन्देल वंश बुंदेल खण्ड में 10 – 13वीं शती तक राज करते रहे।

जालपा देवी के अधिक मन्दिर बनने के कारण गणदेवता के मन्दिर को जालपा मन्दिर के नाम से अधिक जाना जाता है। स्थानीय विश्वासों के अनुसार इस देवी को ज्वालामाता अथवा कात्यायनी का रूप माना जाता है। जालपा को जल से उत्पन्न देवी माना जाता है।

गण देवता के मन्दिर सुन्नी (भज्जी) में रियासत के समय से वर्तमान है। हिमाचल के चम्बा, करसोग, और निर्मण्ड में देव मन्दिरों की स्थापना मिलती है।

कुछ भी हो गणदेवता तथा जालपा माता मन्दिर से बाघल रियासत के प्राचीन इतिहास (12वीं 13वीं शताब्दी) का रहस्य अनावृत होता है।

गण देव हिमाचल प्रदेश का प्राचीन देवता है। यह शिवगण माना जाता है, किन्तु स्थानीय परम्पराओं के अनुसार यह नागगण के रूप में पूज्य है। हिमाचली क्षेत्रों में यह एक मात्र स्थानीय गण देव है जिसकी रथ-चक्र है। गण देव का प्राचीन मन्दिर दाड़लाघाट के कोटला-पुजारी गांव में स्थित है। देवता का रथ फाल्गुन-चैत्र में रथ-चक्र के साथ मनौतियों के अनुसार घर-घर नृत्य करता है तथा परम्परानुसार पूजा जाता है। प्रत्येक छमाही पर लोग फसलों के आगमन पर इसे रोट-कड़ाह भेंट करते हैं।

गण देवता शिवजी के गणों में से एक देव है। इसके अष्टधातु के मोहरे मन्दिर में विराजमान है तथा देव-उत्सवों के समय रथ में सजाये जाते हैं। देव-मोहरों में गले में नाग, साथ में महाकाली की मूर्ति, जालपा का मोहरा और दरवाणी देव के मोहरे हैं। देवता का मन्दिर भले ही दाड़लाघाट के कोटला गांव में है, तथापि मूल-स्थान दाड़ला मुख्य-सड़क के किनारे निर्मित जालपा के मन्दिर के प्रांगण में प्रस्तर-मूर्ति के रूप में वर्तमान है।

8

देव चञ्याला: राणा अजयपाल

विश्व का इतिहास सामरिक वीरों, महापुरूषों, सन्तों, दार्शनिकों तथा दिव्य पुरूषों से सम्बन्धित है। सभ्यता के विभिन्न स्तरों में मानव ने सामाजिक मूल्यों तथा जिजीविषा के लिए जो नियम सर्वमान्य रूप से स्वीकृत किये, उन्हीं के अन्तर्गत ऐतिहासिक वीरों को स्मरण रखने हेतु उनके स्मारक मन्दिरों, देवस्थलों अथवा साहित्य के रूप में सुरक्षित रखे।

ईश्वरीय धारणा मानव क्षमता की अलौकिक परिणति है। मानव विश्वास आधुनिक मनोविज्ञान एवम् ज्ञान की सीमा रेखा के ऊपर है। यही कारण है कि विज्ञान की परम उपलब्धियों के बावजूद मानव मन अपनी जातिगत, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक पहचान बनाए हुए है। प्राचीन संस्कृति, यूनान, रोम, चीन, मैसोपोटामिया, ग्रीन लैण्ड न्यूगीनी, अफ्रीका आदि राष्ट्रों के नगर, ग्राम, भवन, उपग्रह तथा अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के नाम प्राचीन देवों अथवा लोकप्रिय शासकों के नाम पर रखे गये हैं तथा सम्बन्धित राष्ट्र इन नामों से गौरव अनुभव करते है। डायना, अपोलो, जूपीटर, ओरिसिस, इसीस, एडोनिस ऐसे ही ऐतिहासिक वीर हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। संस्कृति एवं इतिहास का चोली – दामन का सम्बन्ध है। भारतीय मनीषा तथा जनसाधारण ने अपने सांस्कृतिक रूप को अनेक इतिहास वीरों के माध्यम से सुरक्षित रखा है।

असंख्य भारतीय इतिहास पुरूष, उनके पराक्रम तथा समाज सेवा से स्मरण किये जाते है। यही कारण है कि अपने इतिहास वीरों को इन गुणों के दृष्टिगत यहां आज भी पूजा जाता है। यहां के लोकगीतों, लोकगाथाओं एवम् देव गीतों में प्राचीनतम सांस्कृतिक कथा की स्पष्ट झलक है जबकि शेष भारत में ये पुरूष पुस्तकों में ही वर्तमान है।

हिमाचल की प्रसिद्ध प्राचीन रियासतों में एक रियासत थी - ''बड़ा बंगाहल'' जो कांगड़ा और कुल्लू तथा रावी एवम् व्यास की घाटियों में अवस्थित थी। यहां पालवंश का स्वतंत्र राणा राज्य करता था। इस का नाम था - राणा अजय पाल। राजवंशावली के अनुसार अजयपाल (1169 ई.) राजा रनौल अथवा रणपाल का पुत्र था। यह ''बीड़ बंगाल'' यानी ''बड़ा बंगाहल'' का राजा था। बसोहली में अजयपाल के नाम पर ''चञ्ज्याला'' किला वर्तमान है। संभवत: अजयपाल के पराक्रम तथा लोकप्रियता के कारण दोनों के नाम एक - दूसरे से जुड़ गये। चञ्जाले किले का स्वामी अजयपाल '' देव जञ्ज्याला'' ही बन गया।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में चञ्ज्याला देव के खुले चौक मिलते है। इस देव की मान्यता सुकेत, कुल्लू चम्बा तथा बसोहली में आज भी बर्तमान है। इस देव की पत्थर की मूर्ति एक बड़े बलवान् राजा के प्रतीक रूप में बड़ी - बड़ी मूछों, हाथ में लाठी, सिर पर ऊन का टोपू, ब्राह्मण वेष में माथे में तिलक तथा गले में हार के रूप में कल्पित की जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में पत्थर के ऊंचे चबूतरे पर लोहे की गुर्जे गड़ी होती है। बाड़ू - बाड़ा देव के स्तुतिगीतों में इसकी स्तुति भी गाई जाती है।

> ''बाम्बल राजे का बेटा राणी गजा का जाया बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै!
> हाथे कंग्यारी माथे टीका बामण रूपे आया।
> देव चंज्याला कहाया।
> बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै ......
> कांडू कुत्ता तेरा वाहण कहिये
> सिंहणी रक्षिणी रा जाया।

बाड़ू बाड़ेया देवा जै – जै। ....
सेरी मांगला ते आया।
सूंइयां रे तालो ते आय। ....
हो पगड़ा चंज्याला ..... बाड़ू बाड़ेया देवा जै – जै।

ऐतिहासिक विवरणों (जे हुच्चीसन एण्ड वोगल) के अनुसार चम्बा के चुराह क्षेत्र में सांई नामक स्थान में एक राणा द्वारा निर्मित बाबड़ी के छत में अजय पाल का नाम उत्कीर्ण है जिसमें तिथि अंकित नहीं है। इससे लगता है कि लेखक किसी सुदूर क्षेत्र का होने के कारण तिथि को एकाएक नहीं जान सका होगा। अजयपाल चुराह क्षेत्र (चम्बा) का राजा नहीं था अपितु कुछ दूर क्षेत्र का राजा था।

अजयपाल राजा मांडलिक, गुग्गा चौहान और बाबा बालक नाथ की तरह प्रदेश में पूजा जाता है। इसके असंख्य पूजा – स्थल वैल्लोर में पाये जाते हैं इसके अतिरिक्त मण्डी, सोलन, शिमला, चम्बा, जनपदों में अन्य देवताओं की तरह चञ्ज्याले की पूजा तथा मान – मनोतियाँ देव यात्राओं में की जाती हैं।

देव चञ्ज्याला के सम्बन्ध में सुकेत, मांगल तथा शिमला क्षेत्र में अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। इसके पराक्रम के सम्बन्ध में एक दन्तकथा इस प्रकार है –

चञ्ज्याला एक बलवान् तथा चमत्कारी ब्राह्मण राजा था। वह सात फुट लम्बा जवान था। वह अपने राज्य छोटे बंगाहल से बड़े बंगाहल को नियमित रूप से जाता था। जिससे वह अपनी प्रजा के सुख – दुख को स्वयं देख सके। वह दस बाटिया (लगभग 50 सेर भोजन) ''दतालू'' बड़े बंगाहल को साथ ले जाता था। यह उसका एक दिन का भोजन था। शारीरिक रूप से वह एक पहलवान दिखता था। बंगाहल राज्य में उसके बराबर का कोई भी क्षत्रिय या ब्राह्मण न था, इसलिए उससे सभी डरते थे वह नंगे पांव चलता था तथा साधारण वस्त्र धारण करता था। अपने हाथ के काते हुए ऊन के वस्त्र ही धारण करता था। प्रजा पर कोई कर आदि न था। खेती – बाड़ी का कार्य स्वयं करता था। कहते हैं कि वह अपनी पुष्ट व पैनी लम्बी हाथ की

अंगुलियों और पांवों से भूमि खोद कर सरसों बीज सकता था। उसके पावों में इतने कांटे चुभे होते थे कि उसकी नानी को प्रत्येक रात को भोजन से पूर्व उसके कांटे निकालने पड़ते थे।

इस अनुश्रुति से राणा अजयपाल के बलिष्ठ शरीर तथा कृषि कार्यो में रूचि की लोकभावना प्रतिपादित होती है।

कहते हैं कि एक दिन चञ्ज्याला बड़े बंगाहल से छोटे बंगाहल की ओर जा रहा था और रास्ते में उसे एक नाले में रात हो गई। चंज्याला ने वहीं एकान्त में आग जलाकर अपने लिए रोट बनाये। अभी अभी वे खाने को तैयार ही हुये थे कि वहां पांच 'वीर' (भूत) आ गये। उन्होंने चंज्याले देव को ललकारा। देव ने दान्त पीसकर उनसे पूछा तुम कौन हो? रात को इतनी आजादी से कहां फिर रहे हो? उनमें से एक ने उत्तर दिया- 'हम पांच वीर है। इन जंगलों में हमारा राज है। हमें किसी का डर नहीं है।' चञ्ज्याले ने उन्हें ललकारा और कहा-'मैं तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। तुमने अभी चञ्ज्याले को नहीं देखा।' वे चिल्लाए- 'अच्छा तो तुम चञ्ज्याला देव हो। हम तो तुम्हें ही ढूंड रहे थे। आज तुम अकेले ही आए। हम तुम्हें मार कर बंगाहल में राज करेंगे।'

कुछ ही क्षणों में घमासान लड़ाई होने लगी। पांचों वीर चञ्ज्याले से लिपट पड़ते थे। किन्तु उसमें अनेक हाथियों का जोर था। उसने पांचों को पकड़ कर ऊन की चादर से बांध दिया फिर एक बहुत बड़े केलो (देवदार) के पेड़ की चोटी की डाल को पकड़कर अपने पांवों के नीचे दबाया और उन्हें उस पर फेंक दिया। वह उन्हें गिराने ही वाला था कि वे पांचों जोर से चिल्लाए और प्राणों की भीख मांगने लगे। पांचों ने डालियों को जोर से पकड लिया। चञ्ज्याला ने डाल पर से पांव हटाया ही था कि वे पांचों ऊपर पेड़ पर लटकने लगे। वे चिल्ला-चिल्ला कर क्षमा मांगने लगे। देव ने उन्हे क्षमा कर दिया। देव ने पेड़ की टहनी को पकड़कर उन्हें नीचे उतारा। वे पैरों पर पड़ गए और देव से कहने लगे- 'आज से हम आपके सेवक हुए।' तब से पांचों वीर चञ्ज्याल के साथ रहते हैं।

वैसे 52 वीरों में चञ्ज्याला देव के साथ इनकी गणना भी होती है। हिमाचली क्षेत्र में चञ्ज्याला देव की पूजा अर्चना अन्य लोक देवों की तरह संक्रान्ति को बकरा, नारियल, अन्न आदि की भेंट चढ़ाकर की जाती है। फसल प्राप्ति पर छमाही को गांव के लोग रोट प्रसाद अर्पित करते है।

इन जनश्रुतियों से 12 वीं शती ई. की जनमानस की राजा - प्रजा प्रेम की भावना की झलक मिलती है। चञ्ज्याले की ऐतिहासिक गाथा राजा वीरसेन (सुकेत) से सम्बन्धित हैं। वीरसेन ने जो एक पराक्रमी पाण्डव वंशज सम्राट था, अजयपाल अथवा चञ्ज्याला को इसीलिए अपनी वजीर नियुक्त किया था। बाड़ू बाड़ा देव मन्दिर में अनेक धातु के मोहरों में चञ्ज्याला का मोहरा भी मिलता है।

देव चञ्ज्याले के मोहरे बाड़ूबाड़ा देव के रथ के अतिरिक्त अनेक देवालयों में रखे जाते है। मण्डी के सुकेत क्षेत्र के अतिरिक्त सोलन के दाड़लाघाट, सांगल तथा बिलासपुर के कुछ क्षेत्रों में चञ्ज्याला देव के गुर्ज रूप में चबूतरे निर्मित मिलते हैं।

9

बाड़ू बाड़ा देव : महावीर वीरसेन

प्राचीन सुकेत की पहल राजधानी थी-बटबाड़ा। बटबाड़ा का पराक्रमी राजा था- वीरसेन। अपनी वीरता तथा पश्चिमी हिमाचल के अनेक ठाकुरों-राणों को हराने के कारण मृत्यूपरांत इसे देवता के रूप में मान्यता मिली। इसे सुकेत क्षेत्र में 'बटवाड़ा देव' अथवा 'बाड़ा देव' कहा जाता है, जबकि सोलन में अर्की तथा मांगल क्षेत्र में इसे 'बाड़ूबाड़ा देव' के नाम से जाना जाता है। यह देव बटवाड़ा क्षेत्र तथा मांगल के अधिशासकों के वंशजों द्वारा 'दादू' कहकर पुकारा जाता है।

बाड़ूबाड़ा देव का मूल-स्थान मांगल क्षेत्र के बेरल गांव के पास बहती सतलुज नदी से लगभग 3 कि. मी. की दूरी पर एक ऊंची पहाड़ी के मध्य 'बाड़ू' नामक गांव में स्थित है। इसीलिए इसे बाड़ूबाड़ा देव भी कहा जाता है। सुकेत राज्य की वंशावली के अनुसार वीरसेन अभिमन्यु पुत्र परीक्षित की श्रृंखला में उत्पन्न राजा है तथा 'सेन' वंश जो पाण्डवों के वंश से ही उद्भूत है, इस वंश की श्रृंखला में 17 वां सेन वंशी राजा है। वीरसेन के पिता का नाम रूप सेन और रूपसेन के पिता का नाम सूर्यसेन था। सूर्यसेन बंगाल का अन्तिम शासक था।

सन् 1189-99 में मुहम्मद बख्त्यार खिजली ने सेन वंश की राजधानी नदिया पर आक्रमण करके उसे हथिया लिया। लक्ष्मण सेन वहां से अपनी राजधानी पूर्वी बंगाल में विक्रमपुर ले गया, जहां उसके पुत्र

विश्वरूपसेन ने राज किया। मुसलमानों के बढ़ते आक्रमणों को देखते हुए विश्वरूपसेन पुत्र सूर्यसेन विक्रमपुर से आकर 'प्रयाग' में बस गया जहां उसकी मृत्यु हो गई। यह बंगाल का अन्तिम शासक था। सूर्यसेन का बेटा रूपसेन प्रयाग छोड़कर पंजाब की ओर आया और सतलुज के किनारे बस गया। रूपसेन के नाम पर ही उस जगह का नाम 'रोपड़' पडा। उसके तीन पुत्र हुए – वीरसेन, गिरिसेन और हमीरसेन। वीरसेन के रोपड़ में ही एक बेटा हुआ, जिसका नाम धीरसेन रखा गया।

1210 ई. में रोपड़ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया। रूपसेन इस लड़ाई में लड़ते – लड़ते मारा गया। उसके तीन पुत्र जान बचाकर पिंजौर की ओर भागे। धीरे – धीरे तीनों अपने – अपने समर्थकों के साथ अलग – अलग दिशा की ओर चले गये। हमीरसेन ने जम्मू की वादियों में किश्तवाड़ की स्थापना की। बीच वाले भाई गिरिसेन ने अश्विनी नदी की घाटी में क्योंथल राज्य बसाया और सबसे बड़े भाई वीरसेन ने अपने साथियों को साथ लेकर पिरी (तत्तापानी) के पास सतलुज को पार करके सुक्षेत्र (सुकेत) की स्थापना की। सुक्षेत्र का अर्थ है – सुन्दर क्षेत्र।

ऐतिहासिक विरणों के अनुसार प्राचीन रियासतों सुकेत, मण्डी, क्योंथल और किश्तवाड़ के शासक राजपूतों की चंद्रवंशी शाखा से सम्बन्ध रखते थे। अत: वे अपने को महाभारत के पाण्डवों के उत्तराधिकारी मानते हैं। सर ए कन्निघम के अनुसार बंगाल में सेन वंश का पूर्वज पराक्रमी राजा वीरसेन 7वीं शती ई. में राज करता था। किन्तु सुकेत का नींव डालने वाला इसी नाम का प्रथम राजा वीरसेन 13वी शती इसी वंश का था। जे हुच्चीसन एण्ड बोगल के अनुसार 13 वीं शती मे वीरसेन ने ज्यूरी फेरी के पास सतलुज को पार किया। अपनी सेना के साथ उसने दूर – दराज के क्षेत्रों पर धावे किए। तत्कालीन राणें तथा ठाकुरों के परस्पर ईर्ष्याभाव और संकीर्णता के कारण युद्धों में सफलताएं प्राप्त की। सर्वप्रथम उसने करोली के ठाकुर तथा बटवाड़ा के शासकों पर विजयें प्राप्त कीं, फिर नागरा के ठाकुर, चिराग के ठाकुर जो बातल तथा थाना में शासन करते थे, चिनिन्दी वाला के ठाकुर जो उदयपुर में

शासन करते थे - जीते। राजा सन्यार्टो, खून्नू के ठाकुर को भी अपने अधीन किया। उसने थाना कुजून, कोटी डेहर, नंद, जंज, सलालू, बेलू और थाना मागरा के क्षेत्रों को भी जीता।

वीरसेन ने विभिन्न किले जीते जिनके नाम हैं - श्रीगढ़, नारायण गढ़, रघुपुर, जन्ज, मधोपुर, वंगा, चन्ज्याला, मगरू, मानगढ़, तुंग, जलौरी, हिमरी, रायगढ़, फतेहपूर, बमथज, कोट मनाली, रायसन, गौड़ा आदि। वीरसेन ने परोल, लागरूपी सरी, डुमहरी भी जीते। ये सब कुल्लू के अधीन थे। कुल्लू के राजा भूपपाल ने वीरसेन को रोकने की कोशिश की, मगर वह हार गया। उसे बन्दी बनाकर जेल भेज दिया गया। शायद भूपपाल को जल्दी ही रिहा करके उससे नजराना वसूल किया जाने लगा। कुल्लू को फतह करने के बाद वीरसेन ने पण्डोह, नाचती, रायसन, चिड़िहा, जुराहन्दी, सतगढ़, नंदगढ़, चच्योट और पुरी किलों पर अधिकार कर लिया।

उत्तरी सीमाएं बढ़ाने के पश्चात् वीरसेन पश्चिम की ओर मुड़ा और बल्ह इलाका जीतते हुए 'सिकन्दर की धार' तक पहुंच गया। हटली के राजा को युद्ध मे हराकर वीरसेन ने वहां 'वीरकोट' के नाम से एक किला बनाया जो आज भी 'वीहर कोट' के नाम से जाना जाता है।

इसके पश्चात् वीरसेन ने 'सर खड्ड' के किनारे 'वीरा' के नाम से एक किला बनाकर कांगड़ा के साथ सीमा का निर्धारण किया। इस प्रकार वीरसेन ने बहुत बड़े राज्य का निर्माण किया। समस्त राणे और ठाकुरों को विजय पर वीरसेन ने अपने परिवार को एक सुरक्षित स्थान खुन्नूधार में महल बनाकर एकान्त में भेज दिया जिसे आज भी 'नरोल' (निजी आवास) कहा जाता है।

ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार 1240 ई. में सुकेत में राजा मदनसेन राज्य करता था। उसने दक्षिण में सतलुज की तरफ भज्जी शांगरी और कुमार सेन को जीतकर अपने अधीन किया ओर कर देने पर बाध्य किया। कुछ समय पश्चात् बटवाड़ा के राणा श्री मंगल ने कहलूर से सन्धि करके मदन सेन के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और वार्षिक कर देने से इन्कार कर दिया। मदन

सेन ने उस पर आक्रमण किया जिसमें श्री मंगल की हार हुई। मदन सेन ने उसे सुकेत से बाहर धकेल दिया। उसने सतलुज को पार किया और पांच कोस की एक छोटी सी रियासत की नींव डाली, जिसका नाम रखा- ''मांगल''।

श्री मंगल जिसके नाम पर रियासत का नाम मांगल पड़ा था- से सम्बन्धित विवरण मांगल राजवंश की वंशावली (संभवत: जनश्रुतियों पर आधारित) में कुछ अन्य प्रकार से वर्णित है। इस हस्तलिखित वंशावली के अनुसार श्री मंगल को मार दिया गया था। तथा इसके नवजात शिशु को इसके विश्वस्त एक ब्राह्मण तथा मांगते ने ढोल में छुपाकर बचा लिया था। इसके अनुसार- ''पुराने समय की जिक्र है कि महाराजा सुकेत और महाराजा मण्डी का आपस में सीमा सम्बन्धी झगड़ा हुआ। इस झगड़े के निपटारे के लिए कांगड़ा से मानचन्द्र गुलेरिया फेसले के लिए बुलाया गया। उसने दोनों का तसबीहा करा दिया।

एक दिन मानचंद गुलेरिया सैर करते-करते बटवाड़ा की राजधानी सेरी मांगल पहुंचे वहां राजा मंगल चंद शासन करता था। उसका एक भाई था जिसका नाम था- कंवर टीटो। टीटो मंगलचन्द से ईर्ष्या करता था टीटो ने मानचंद गुलेरिया से मिलकर मंगलचन्द के विरूद्ध षडयन्त्र रचाया। उसने गुलेरिया से उसकी चुगलियां करके उसे भड़काया। मंगलचन्द पर राजा सुकेत पहले ही सन्देह करता था। उसे उसकी वफादारी पर शक था टीटो ने गुलेरिया से कहा- ''महाराज, यहां तो'' रूण्डों (बहशी और दुराचारी, धींग) का राजा है। राजा मानचन्द और टीटो के आदमियों ने मंगलचन्द पर हमला किया। शाम का वक्त था, इस हमले में श्री मंगल मारा गया।

मंगलचंद के पुरोहित सालिगराम भटुआ को जब मालूम हुआ कि राणा मारा गया तो वह रानी बंदल देई तथा टीके के पास ठाकुर द्वारे में गया जहां वे पूजा कर रहे थे। उसने रानी से सब हाल कहा और तत्काल भाग चलने को कहा। टीका रघुनाथ चन्द डेढ वर्ष का बालक था। वे तीनों भागते अगली धार में मांगता संत के घर गये। तब मांगता और मांगती (मंगलामुखी)

भी उनके साथ भागने को तैयार हो गये। चलते - चलते वे बीहड़ जंगल के पार ''गहरू की धार'' में पहुंचे। रात का अन्तिम पहर था। वे सुस्ताने के लिए एक चट्टान पर बैठे ही थे कि पीछे से सिपाही आ गये। राजा मानचन्द को कंवर टीटो से खबर मिली थी कि रानी टीके को लेकर भाग गई। सिपाहियों ने मांगता संत से पूछा कि टीका कहां हैं? मांगते ने टीके को अपने ढोल में छुपा रखा था। उसने अपने डेढ वर्ष के लड़के की ओर इशारा किया जो एक चादर में लिपटा सो रहा था। सिपाहियों ने उसे मार दिया और लौट गये। सालिगराम भटुआ, मांगता संत, मांगती रानी और टीका एक डवार (गुफा) कंदरा में घुस गये। वे उस वियावान जंगल में 18 दिन छुपे रहे। मांगता संत इधर - उधर से थोड़ी बहुत खाने की सामग्री लाता रहा और सालिगराम भटुआ रसोई बनाता रहा।''

इस घटना से लगता है कि हमले का पता चलते ही मांगता संत और सालिगराम ने चतुराई से योजना बनाकर राजकुमार रघुनाथ चन्द को ढोल में छुपाकर भाग कर बचा लिया था। मांगता संत ने अपने बच्चे की बलि देकर उसकी जान बचाई। संभवतः इस हमले में श्रीमंगल 'बाडू' के इस स्थान पर मारा गया होगा इसीलिए उसके वंशजों ने अपने पूर्वज पराक्रमी वीरसेन का 'देवस्थल' इस स्थान पर निर्मित किया होगा। पर्वतीय क्षेत्रों में ही नहीं, समस्त विश्व में ऐसे स्थलों पर अपने वंश के देव - पितृ देवों के निर्माण की परम्परा रही है।

इसके पश्चात् ये राजपरिवार के विश्वस्त लोग बेरल के पास सतलुज से पार हुए। वे 'कन्धर' पहुंचे। यह एक सुरक्षित नाला था जो चारों ओर से ऊंची पहाड़ियों और दरिया से सुरक्षित था। वे कई दिन तक 'कन्दरा' में रहे, अतः मांगल की राजधानी का नाम 'कन्धर' पडा। इस अवसर पर राजा बिलासपुर ने, जो रानी के सम्बन्धी थे - रानी की मद्द की और टीका रघुनाथ चन्द को इस 5 कोस क्षेत्र का राणा घोषित किया। उस समय सालिगराम भटुआ तथा मांगता संत को 'सासण' (जागीरें) प्रदान की गई जो आज भी इनके वंशजों के पास है।

देवगीत

देव की वंशावली का इस 'भारनी' (देवगीत, देवता को उभारना, जाग्रत करना) से पता चलता है -

' हो पगड़ा महाराजा देवा, बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै
नेवल छोड्या पहाड़े नो आया वण्या पहाड़े दा राजा।
बाड़ू – बाड़ेया देवा जै जै ....
पहला युद्ध दिल्लिया कित्या काले अम्बे आया
काले अम्बे ते बदेया राजा नालनियां डेरा लाया
बाड़ू – बाड़ेया देवा जै जै ....
काले अम्बा ते चलेया देवा काले खूंटे आया
चेरी तन्यारा बाबुल तेरा बाडुए डेरा रचाया
बाड़ू – बाड़ेया देवा जै जै ....
बाई गजो री पाणी मटयाल्या, ये सत्त देख्या तेरा
बाड़ू – बाड़ेया देवा जै जै ....'

'हे बाड़ू बाड़ा देव। तू हमें दर्शन दे। तेरी जय हो। नेवल (मैदान) छोड़कर तुम पहाड़ में आये और पहाड़ों के राजा बने। बाड़ा देव, तुम्हारी जय हो।

पहले तुमने दिल्ली में युद्ध किया फिर वहां से काले अम्ब, (सिरमौर क्षेत्र) आये। काले अम्ब से नालनी (बटवाड़ा का स्थान) आकर डेरा जमाया। हे बाड़ू बाड़ा देव, तुम्हारी जय हो।

देव, तुम्हारा बचपन 'चेरी तन्यारा' स्थान पर बीता। फिर भी तुमने बाड़ू आकर अपना डेरा लगाया।

तुमने लोहे की गुर्ज मार कर धरती से पानी निकाला। यह तुम्हारा प्रताप है, यही तुम्हारा सत्य है। हे बाड़ूबाड़ा देव, तुम्हारी जय हो।

मण्डी, मांगल, अर्की क्षेत्रों में देवता की रथ यात्राओं में यह देवगीत गाया जाता है। इस देवगीत से पता चलता है कि यह देव दिल्ली (या उससे भी आगे) से काले अम्ब के रास्ते भज्जी क्षेत्र से सतलुज को पार करके 'नालनी' और बाड़ू स्थानों में निवास करता रहा। अतः दोनों स्थानों पर इस पूर्वज राजा के मूल देवस्थल है।

बड़ूबाड़ा की 'भारनियों' में देव चंज्याला, (राणा अजयपाल) से सम्बन्धित छन्द भी मिश्रित हैं। चंज्याला देव इस देव का प्रमुख 'वीर' (सेनापति) है जो बड़ा भंगाहल का राजा था। यह सदैव इसके साथ रहता था। चंज्याले किले का स्वामी होने के कारण इसका नाम ही 'चंज्याला' पड़ गया। यह भी 'सेरी मांगल' से 'बाड़ू' में देवता के साथ आया है। यह राजा ब्राह्मण था तथा सुइनी ताल में रहता था। इसकी 'भारनी' इस प्रकार मिलती है –

'बामल राजे का बेटा राणी गजा का जाया, बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै।
काड़ू कुत्ता बाहण तेरा सिंहणी राक्षणी रा जाया
बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै ....
गले जनेऊ माथे टीका बामण रूपे आया
सुंइया रे तालो ते आया बाडुए डेरा रचाया
बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै ....
कुछ अन्य प्रकार के देव भजन भी इस देव की स्तुति में गाये जाते है –
किले चंज्याले देवा सिरे ऊना रा तेरे टोपू
चिट्टिया ऊना रा तेरे टोपू ....
भीड़ा भंगाला ते तू आया
भेड़ा – बकरिया रा तू ग्वाला
किले चंज्याले देवा।
बामल राजे का बेटा, राणी गजा का जाया।
किले चंज्याले देवा। बाड़ू बाड़ेया देवा जै जै ....'

चंज्याला देव, भारती कबीर (भर्तृहरि गंभीर) टौणा देव, सुइनू बनाल, (स्थानीय वीर) हीरा मैहता, तोगड़ा बजीर, गाड़-गड़ौण, भगवती राणी तथा दरवाणी देव के साथ मूर्तियों के रूप में 'बाड़ू' गांव के देवरे में वर्तमान हैं। इन मोहरों से पता चलता है कि ये वीर पुरूष देवता के प्रमुख साथी रहे होंगे। राणा अजय पाल, भर्तृहरि गंभीर तथा अन्य वीरों की दन्तकथाएं इस क्षेत्र में वर्तमान हैं। ये विजय अभियानों में वीरसेन के साथ रहते थे।

श्री मंगल को क्योंकि सतलुज के पार किसी स्थान पर राजा सुकेत ने मार डाला था अत: मांगल के राजवंश ने अपने पूर्वज के नाम पर यहां देवरे की स्थापना की। परम्परा है कि 'बाड़ू बाड़ा' की सबसे पहली यात्रा सतलुज को लांघकर मांगल में ही होती है। मांगल राजवंश का यह 'दादू' सेन वंश के प्रथम शासक की स्मृति मानी जा सकती है। यह भी संभव है कि वीरसेन इस स्थान पर वीरगति को प्राप्त हुआ हो।

किंवदन्ती है कि 'बाड़ू' पहले धार पर था ..... एक स्त्री के बच्चा होने वाला था। वह अकेली थी। उसे पानी की जरूरत थी। वह चल फिर नहीं सकती थी। उसने सिर नवाकर सच्चे मन से बाड़ूबाड़ा से प्रार्थना की कि वह उसे पानी पिलाये। कुछ ही क्षणों में गांव कटकर नीचे आ गया और झरना भी ऊपर से नीचे आया। गांव कटने (बाड़णे) के कारण ही इसका नाम 'बाड़ू' पड़ा। देवता ने उसे दर्शन दिए और एक गुर्ज धरती पर मारकर पानी का झरना निकाल दिया जिसे आज 'बाड़ू का झाल' (झील) कहते है। इस झरने में देवता के भणेते (देवकरू) के इलावा कोई नहीं जा सकता था। वह भी केवल दुर्गाष्टमी को ही जा सकता है।

बाड़ू बाड़ा मन्दिर (देवरा) के मूल कमरे में सारा वर्ष कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। न इस मन्दिर का द्वार ही खुलता है। केवल देवता के असली मोहरे के दर्शन किसी विशेष संक्रान्ति को ही किये जा सकते हैं। देवता के मोहरे, रथ, छत्र अलग बनाये गये हैं। देवस्थान में केवल चावल चढ़ते हैं। बाड़ूबाड़ा को भेडू नहीं चढ़ाए जाते। कहते हैं कि देव एक भेडुओं की गोशाला में ही छुपकर बच सका था। इसकी देव की पूजाएं और रथ-छत्र, बाड़ू,

कांगरी, नालनी, दाड़ला आदि क्षेत्रों में वर्तमान हैं। इसकी रथ-यात्राएं फाल्गुन मास से चैत्र तक निकलती हैं। छमाही पर नई फसलें आने पर पूरे क्षेत्र में इसे पूजे जाने की परम्परा है। लोग मनौतियां करते हैं तथा देवता पर अगाध विश्वास है।

बाड़ूबाड़ा हिमाचल के प्रमुख लोक देवताओं में से एक है जिसकी मान्यता मण्डी, बिलासपुर, सोलन आदि क्षेत्रों में है तथा सबसे अधिक मनौतियां और देवयात्राएं इसी देवता की होती हैं।

बाड़ू-बाड़ा देव एवं सहयोगी देवता

बाड़ू-बाड़ा देव (महापराक्रमी राजा वीर सेन) का मूल मन्दिर मण्डी के पांगणा में स्थित है। इसके वीर-अभियानों के कारण क्षेत्र के बाहर भी इसका यशोगान हुआ। यह अपने पराक्रम और प्रजा प्रेम के कारण पूजा गया तथा इसे देवता का स्थान मिला। इस देवता के देवरे मण्डी और सोलन क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर वर्तमान हैं। इसके दरबारी सहायकों को भी स्वतंत्र रूप से देवता के रूप में पूजा जाता है। सदियों से बाड़ू-बाड़ा के प्रशस्नि गीत (भारनी) भक्तों द्वारा गाये जाते रहें हैं।

टौणा देव

टौणा देव, बाड़ू-बाड़ा देव से संयुक्त देवता है। बाड़ू बाड़ा देव के रथ में टौणा देव की मूर्ति भी सुशोभित होती है। इस देवता का मूल-मन्दिर कनेरी धार (पांगणा) के आंचल में है। कनेरी गांव की ऊंचाई समुद्रतल से 5500 फुट है। यह गांव चीड़ और देवदार के पेड़ों के बीच सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है गांव के प्रारम्भ में एक दो मंजिला भव्य कोठीनुमा मन्दिर है। यही कमेरी देवी अर्थात टौणा देव की कोठी है। प्रवेश द्वार के अन्दर गर्भगृह के दांए काष्ठ की आदमकश मूर्ति है जो मध्यकाल की है। यह भारती खमीर (संभवत: भतृहरि गंभीर राजा) की मूर्ति है। इसे स्थानीय भाषा में मुंढड़ी कहते हैं। इस मुंढड़ी का श्रृंगार हजारों लोहे के कड़ों (रिंग) त्रिशूलों,

चिमटों, कीलो तथा कीलित सिक्कों से किया गया है।

टौणा देव की थाणियां (थान, चबूतरे) मढ़धार, संदलहल, कुरशाल, मटीउड़ा, कलाशन, थलटू तथा सरा ओड़ी आदि सुकेत - पांगणा के स्थानों में है। इन स्थानों पर देवता के मेले लगते हैं।

जब यह देवता मठीधार की यात्रा पर होता है तो गति, झीरू या शोर से वातावरण गुंजायमान करना पड़ता है क्योंकि तीव्र संगीत में देवता उल्लास से नृत्य करता है।

टौणा देवी के साथ अन्य देवता हीरा मैहता, भारती कबीर, अठारह बाण वाला, मशाणु, लालहरा, तोगड़ा बजीर, सूमा बशहरा, जहड, दबावड़ी आदि है। ये सभी देवता टौणा देव के दरवाणी अथवा सेनापति थे।

हीरा मैहता

यह देवता बाड़ू बाड़ा देवता का बजीर था। एक जन श्रृति के अनुसार पुराने समय में छड़यारा गांव में एक यक्ष का आतंक फैला था तो हीरा मैहता ने उसे पराजित कर भगा दिया था तब से छड़यारा गांव में इसकी पूजा होने लगी। इसके पिता धुमका तथा माता वंशरो है।

देव भारती

(लगता है यह भर्तृहरि गंभीर नाम का राजा था) इस देवता को मण्डी - सोलन के क्षेत्रों में भारती - कबीर के अपभ्रंशक नाम से जाना जाता है। भारती देव मायावी शक्ति सम्पन्न है। लोक विश्वास है कि शिव भगवान ने उन्हें आर्शीवाद दिया है कि तुम भूतों, यक्षों, राक्षसों को मारकर चबा जाओ और अन्य देवताओं के साथ प्रांगण या द्वार पर उन देवताओं की इच्छानुसार निवास करो।

यह क्रूर श्रेणी का देवता है। इसकी उपासना से शत्रुओं से रक्षा होती है।

इस दन्त कथा से पता चलता है कि भारतीय कबीर टौणा देव के

पश्चात दूसरे स्थान पर बाड़ू बाड़ा देव का सेनापति रहा होगा। लोग इस देवता की पूजा से गांव की सम्पन्ता की कामना एवं विश्वास रखते हैं। देवमाया से पता चलता है कि देवता किसी युद्ध में बहरा (टौणा) हो गया था, किन्तु बलशाली योद्धा था तथा सुकेत की किसी जागीर का स्वामी था। जब हीरा मैहता का युद्ध एक राक्षस से हुआ तो भारती खमीर के परामर्श पर इसके राक्षस पर उल्टी तलवार से वार कर अधमरा कर छोड़ दिया था, क्योंकि टौणा देव ने उसे जीवन दान बख्श दिया था।

बाद में टौणा देव एक खेत में छण्डयारा गांव में मूर्ति के रूप में अवतरित हुए, अतः उन्हें घण्डयारा देव के नाम से पुकारा गया।

देव गाड – गुशैण

यह मुख्यतः पशुओं का रक्षक देवता है। कुपित होने पर यह पशुओं में असाध्य बीमारिया फैला देता है।

तोगड़ा

यह देवता बताड़ जाति का है। इसका स्वभाव कठोर है। यह देवठियों से बाहर पूजा जाता है। यह पशुओं का रक्षक है।

(10)

कर्ण के अवतार-माहूनाग देव

भारत वर्ष में नाग पूजा पौराणिक काल से चली आ रही है। वेदों में यह जाति के रूप में नहीं मिलती। पुराणों में शेषनाग को प्रमुख देवता की मान्यता के साथ-साथ अन्य नागों का वर्णन मिलता है, ये हैं - तक्षक नाग, वासुकी, कर्कोटक, वज्रदर्शक, कुलीर, शंखु और कालि नाग। क्षीर सागर मे लेटे विष्णु भगवान को शेष नाग ने उठाया है- इस धारणा से 'नाग' देवता की महत्ता का पता चलता है। महाभारत में नागों की उत्पत्ति कश्यप और कादरू की सन्तानों के रूप में हुई है जिन्हें महाराजा

जनमेजय ने नष्ट करने का प्रयत्न किया था। महाभारत में नाग जाति के अनेक राजा हुए, वासुकी, ऐरावत, धनंजय आदि।
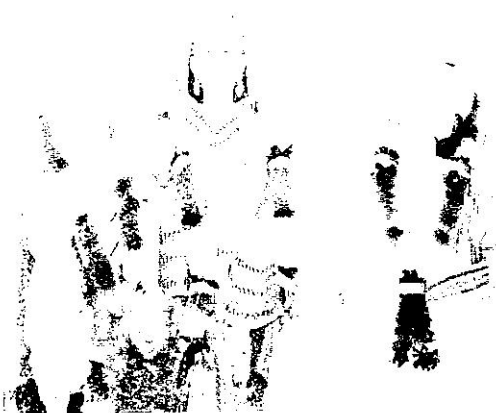
समस्त भारत में नाग पूजा की परम्परा है। आदि वासी समाजों में तो यह अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक वन्दनीय है।

हिमाचल में नाग पूजा

हिमालयी क्षेत्रों में नाग देवता की पूजा सर्वाधिक प्रचलित है हिमाचल प्रदेश में नागपंचमी उत्सव इसका प्रमाण है। मण्डी में माहूनाग नाग चला, कमरू नाग, चम्बा - भरमौर में केलांग नाग, कांगड़ा में भागसू नाग, शिमला

चिढगांव में सूणी नाग, चम्बा में खज्जी नाग के प्रसिद्ध मन्दिर है। गूगा जाहर पीर की जीवन गाथा सांपों से जुड़ी हुई है। किन्नौर में 18 नागों का जन्म एक स्त्री के गर्भ से माना गया है।

इतिहासकारों के अनुसार नाग जाति हिमाचल की प्राचीन जातियों किन्नर, किरात, यक्ष, गंधर्व की तरह एक मानव जाति थी। लगता है नाग जाति के महान राजाओं को प्रारम्भ में नाग के रूप में देवता की तरह पूजा गया होगा। बाद में अन्य पराक्रमी वीरों को नागों के रूप में पूजा जाने लगा। यही कारण है कि हिमाचल की धार्मिक कथाओं और लोक कथाओं में सांपों का जन्म किसी स्त्री के गर्भ से वर्णित मिलता है। कुल्लू और किन्नौर के अधिकांश नागों का जन्म स्त्रियों के गर्भ से लोक विश्वासों में पाया जाता है। चम्बा जिला में कालू नाग, महाल नाग, थैनंक नाग, मूथल नाग, बीरू नाग आदि स्थानीय नामों पर नागों के देवस्थल हैं। नागों को जल देवता (ख्वाजा) माना गया है तथा पातालवासी कहा गया है। कुल्लू के सिराज में मूंगा गांव के चमाहं नाग को शेषनाग माना गया है। वासुकी का नाग मन्दिर कुल्लू के हलाण गांव में है। शिमला के उत्तरी क्षेत्र और किन्नौर क्षेत्र में बशेरू नाग के अनेक मन्दिर हैं। वर्तमान में हिमाचल के समस्त क्षेत्रों में नाग अथवा माहूनाग के अनेक आधुनिक मन्दिर निर्मित हुए हैं।

परयाब – अर्की का मांहू नाग देव

शिमला - बिलासपुर मुख्य सड़क पर कराड़ाघाट से लगभग 15 कि. मी. की दूरी पर एक सुन्दर पहाड़ी पर स्थित माहूनाग का लघु मन्दिर स्थित है। इस पहाड़ी की उत्तरी ढलान के तल में सतलुज नदी बहती है जो अर्की - (सोलन) क्षेत्र को मण्डी - करसोग क्षेत्र से अलग करती है। परयाब - नाग मन्दिर को चण्डी - खाली गांव से एक किलो मीटर पैदल चलकर आराम से पहुँचा जा सकता है। इस पहाड़ी पर एक अन्य ऐतिहासिक देवता बाडू बाड़ा का मन्दिर माहूनाग मन्दिर से लगभग एक फर्लांग की दूरी पर मंज्याटल जंगल के शिखर पर स्थित है जो सदियों से लोगों की आस्था और श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। मंज्याटल जंगल घने - पेड़ों चीड़, देवधार झड़ीनू आदि से भरा हुआ है। यहां जंगली जानवर बहुतायत में पाये जाते हैं।

दोनों देवताओं की पूजा संक्रान्तियों को की जाती है तथा वर्ष में दो बार मीलों तक फैले इस पहाड़ की प्रत्येक व्यक्ति परिक्रमा करना पुण्य का कार्य मानता है।

परयाब माहूनाग मन्दिर

कहते हैं माहूनाग का मूल मोहरा करसोग के मूल मन्दिर बरवारी कोठी से स्वयं यहां उड़कर आया था जिसमें नाग की आकृति थी। लोगों ने बड़े श्रद्धा और विश्वास से इसे यहां स्थापित किया। एक लोकविश्वास के अनुसार यहां पर खेत में जब एक किसान हल चला रहा था। तो उसे खेत में दबी एक सर्पाकार पत्थर की मूर्ति मिली तथा लोगों ने माना कि मर्ति स्वयं यहां अवतरित हुई है।

देव स्थान बहुत प्राचीन है। इसका प्रमाण इस लघु-मन्दिर के प्रांगण में लकड़ी की 3-4 फुट ऊँची देवता के वजीर अथवा दरबार की मूर्ति है। लकड़ी की इस अदभुत आदमकश मूर्ति में वर्षा- तूफानों से दरारें पड़ गई हैं लेक्नि मूर्ति की भव्यता और भयानकता स्पष्ट झलकती है। प्रारम्भ में यहां माहूनाग का चबूतरा रहा होगा बाद में धातु की लघुमूर्ति स्थापित की गई। 1977 ई. में इसके चारों और लघुमन्दिर निर्मित किया गया जिससे यहां के स्थानीय निवासियों पजीणा, चण्डी-कशलोग के लोगों द्वारा सहयोग दिया गया। मूर्तियों से पता चलता है कि यह देवस्थान दो शती पूर्व राजाओं के समय अस्तित्व में आया।

यह देवता माहू (शहद की मक्खी) के रूप में यहां प्रकट हुआ अतः इसे माहूनाग कहा गया। माहूओं (मौन-मधुमक्खी) को यहां मन्दिर के उत्तरी आले में स्थापित किया गया है। मन्दिर 6 फुट लम्बा तथा 6 फुट चौड़ा व 5 फुट ऊँचाई लिए है। बाहर इस देवता के सहयोगी रगसेटा तथा मसाणु वीर की ढाई फुट ऊँची पत्थर की मूर्तियां है। एक अन्य नाग का डेढ़ फुट ऊँचा कमरा निर्मित किया गया है जिसमें स्थानीय पजीणा-परयाब गांव की मन्दिर-कमेटी का सहयोग मिला है। मन्दिर का नवीनीकरण किया गया है एक बड़ी भव्य इमारत निर्मित हो रही है।

नाग देव का मेला

माहनाग के मेले प्रमुखतय: अश्विन संक्रान्ति तथा दुर्गाष्टमी को बड़े-स्तर पर आयोजित होते है। अर्की तथा बाहर से लोग मान मनौतियों के लिए यहां यात्रा करते हैं। नाग को अनाज, छत्र, नाग की सोने चांदी की आकृतियां आदि चढ़ाते है।

माहू नाग–बरवारी कोठी का मूल मन्दिर

माहू नाग मन्दिर सदियों पुराना कलात्मक भव्य मन्दिर है। माहू नाग का मूल-स्थान मण्डी के करसोग क्षेत्र के बरवारी नामक स्थान पर स्थित है, बरवारी कोठी मन्दिर के दो भाग हैं। भीतरी गर्भगृह तथा बाहर सराय है। गर्भगृह की धरातल वाली मन्जिल में मुख्य द्वार और 5 कमरे हैं। प्रमुख कमरे का बड़ा द्वार ''प्रौल'' कहलाता है। यह द्वार चांदी के पत्तों से मढ़ा हुआ है तथा सांपों की चित्रकारी अंकित है। इसके भीतर देवता का रथ रहता है। दायें वाले कमरे में नाग की चांदी की बड़ी मूर्ति है तथा एक रथ पर अनेक रक्षक, गण देवता की मूर्तियां और धातु के मोहरे हैं। बाई तरफ जलदेवता की लकड़ी की मूर्ति स्थापित है। इसमें लोहे के कड़े लिपटे हुए है। इसके सहयोगी देवता रक्सेटा, मशाणु आदि देवताओं की अन्य मूर्तियां भी रखी हुई है। माहूनाग मन्दिर 3 मन्जिला है इसके दो छत और चारों दीवारें लकड़ी की बनी है और शीर्ष में कुरण्ड लकड़ी की पवित्र लकड़ी की टोपी नुमा शिखर है। कुरण्ड पर धातु के सुन्दर कलश सुशोभित हैं। बाहरी भवन चौकी का आकार का दो मन्जिला है इसके दाहिने अखण्ड 'घूणा' जला रहता है। बाहरी भवन में प्रवेश के लिए दो मुख्य द्वार है। आंगन (ताटी) में एक सभा कक्ष है। यह चारों ओर से खुला है। इसके लकड़ी के स्तम्भों में नक्काशी की गई है।

माहूनाग की 12 मुख्य कोठियां हैं। सभी स्थानों में इनकी संख्या 108 मानी देव को भी पाण्डव-कह कर पुकारते हैं। गई है। प्रमुख नाग कोठियों में गटकर, अरठी, नलसर, रिवालसर, टारणा, कल्पा, तारा देवी माहू नाग बोवा (शिमला) माहू नाग परयाब (अर्की) माहूनाग टेपरा (बिलासपुर) प्रसिद्ध हैं।

माहू नाग देव की उत्पत्ति

एक बार यहां शैन्दल गांव का एक किसान खेत फाल की नोक में एक पत्थर टकरा गया जब किसान ने पत्थर को बाहर निकाला तो उसके नीचे स्वर्ण चोटी वाला एक नाग को कुण्डली मारे देखा। लोकमान्यता के अनुसार ऐसा सांप माया रूपी होता है, उस पर पर्दा डालने से यह धन – दौलत में बदल जाता है इसी विचार से किसान ने अपनी चादर उस पर फेंकी। जब चादर हटाई तो उसके नीचे से दिव्य – पुरुष प्रकट हुआ जो महाभारत का कर्ण – था – कर्ण ने किसान से कहा कि मैं यहीं हिमालय में वास करना चाहता हूँ, तुम मेरी पत्थर की मूर्ति को यहाँ स्थापित करो ''। ऐसा कहते हुए कर्ण अन्तर्धान हो गया।

किसान और गांव वासियों द्वारा यहां नाग देवता की प्रतिष्ठा की गई। उस समय आकाश में बिजली चमकी और उस स्थल के पास देवदार के पेड़ ने आग पकड़ली कहते हैं कि माहू नाग देवता के धूने की आग उसी वृक्ष की आग है। आज भी मन्दिर में अखण्ड धूना जलता है। कहते है स्थापना के समय एक आदमी को देवता की छाया मिली और उसे 'खेल' आई। उसने खेलने – खेलते कहा कि देवता की स्थापना 'बखारी' गांव की जाये, तब भसनाला, घमरोला और बगड़ाधार गांव के लोगों ने साथ मिलकर इसकी स्थापना बखारी गांव में की।

माहू नाग – मेला

माहू नाग देवता के मेले के विषय में एक प्रसिद्ध जनश्रुति प्रचलित है – कहा जाता है कि सुकेत रियासत के राजा श्यामसिंह (1620 ई. – 1650 ई.) को मुगल बादशाह औरंगजेब ने दिल्ली में कैद कर लिया था। बादशाह पहाड़ी रियासतों को अपने अधीन करना चाहता था। राजा मजबूर था। कैद में किसकी मदद ले? राजा ने सच्चे मन से सुकेत के अपने कुल देवता माहू नाग का स्मरण किय तथा मुक्ति की मांग की।

नाग देवता प्रसन्न हुए। एक (मधुमक्खी) के रूप में राजा के सिर पर

मंडराने लगा। मांहू के मंडराने से राजा को देवता की उपस्थिति का आभास हुआ। राजा आंखे बंद करके ध्यान में लीन हो गये। ध्यान की स्थिति में कर्ण के रूप में नाग देवता ने राजा को कहा कि वह शीघ्र ही औरंगजेब की कैद से आजाद हो जाएगा। राजा ने संकल्प किया कि यदि वह मुक्त होगा तो आधा राज्य देश को समर्पित कर देगा।

संयोग वंश औरंगजेब शतरंज और हार पाशा खेलने के लिए किसी साथी को चाहता था किन्तु उसके साथ शतरंज खेलने वाला कोई न था। जब श्याम सिंह को पता चला तो उसने अधिकारी से शतरंज खेलने की बात कही।

औरंगजेब ने राजा के साथ शतरंज खेलना स्वीकार किया और प्रसन्न होकर कहा कि यदि राजा बाजी जीत जाये तो उसे मुक्त कर दिया जायेगा। शतरंज में राजा माहिर था। वह आसानी से बाजी जीत गया। बादशाह ने राजा को आजाद कर दिया।

देवता का प्रताप

मुक्त होकर सुकेत लौटने पर प्रजा ने राजा का खूब स्वागत किया और उत्सव मनाया। कहते हैं तब से उसी दिन 'मेला माहूनाग' (मेला बागड़ दड़) का आयोजन हर साल ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति से आरम्भ होकर तीन दिन तक चलता है। आज भी यह उत्सव धूमधाम और श्रद्धा से मनाया जाता है। मण्डी के शिवरात्रि मेले में देव कमरू नाग को देवताओं में प्रमुख माना जाता है तथा सुकेत के माहू नाग को भी बराबर का दर्जा दिया जाता है। राजा ने प्रसन्न होकर देव स्थल को एक बड़ी भूखण्ड प्रदान किया था।

देवता रथ - छत्र के साथ घर - घर मान - मनौतियों के रूप में पूजा जाता है। नाग की कृपा से खेती, अन्न, धन्न, पशु रक्षा की कामना की जाती है तथा कीड़ों - मकौड़ों से रक्षा की कामना की जाती है।

नाग एक प्रतीक

समाजशास्त्रियों के अनुसार नाग एक मानव जाति थी जो नाग

पूजक थी। प्राचीन संस्कृत साहित्य में नाग राजाओं का पर्याप्त वर्णन मिलता है। ऐसा लगता है कि किरात, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर आदि जातियां जिस प्रकार लुप्त हो गई अथवा अन्य जातियों में समाहित हो गई उसी प्रकार नाग पुत्र कश्यप की पत्नी कद्रू के गर्भ से हुआ था। ब्रह्मा ने उन्हें जननाशक पाकर अलग " नागलोक " की रचना की थी, 'वराह पुराण' में कश्यप तथा कद्रू की आठ सन्तानों का वर्णन है - अनन्त, कंब, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक तथा वासुकी इनकी सन्तानें निर्दय तथा विषधर हुई। वे प्रजा को नष्ट करने लगीं। तब उनकी माता ने उनके सर्वनाश का शाप दिया। उनके रहने की व्यवस्था पाताल, वितल और सुतल में हुई। बाद में जन्मेजय के यज्ञ में ये दुराचारी नाग मार डाले गए। कालान्तर में नष्ट होने पर यह जाति इनके इष्ट शेषनाग के प्रतीक के रुप में स्मरण की जाने लगी। सारे आर्यावर्त के नागवंश के राजा उन्हें नाग के रुप में ही पूजने लगे।

इतिहासकारों के अनुसार नाग एक विशेष मानव जाति थी जो हिमालय के पार रहती थी। यह प्राचीन शक जाति की ही शारवा थी। कृष्ण ने इसी का दमन किया था। जन्मेजय ने उन्हें यज्ञ के पश्चात मार कर समाप्त कर दिया था। अनेक प्राचीन राजाओं का जातीय प्रतीक नाग रहे हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में तक्षशिला नरेश नाग पूजक था ऐसे विवरण यूनानी लेरवकों के विवरणों में मिलते हैं। उड़ीसा के कुछ राजाओं की मुद्राओं पर फण फैलाए नाग राजा के नीचे मानव-मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। छोटा नागपुर के शासक अपने को पुण्डरीक नाग का वंशज मानते थे। बंगाल के कुछ कायस्थ परिवार अपने को वासुकी नाग से उत्पन्न मानते है। कश्मीर का ललितादित्य स्वयं को कर्कोटक नाग का वंशज मानता था। अर्जुन ने नागकन्या उलूपी और जरत्कारु मुनि ने वासुकी नाग की बहन से विवाह किया था।

(11)

बाड़ा देव : पांडव योद्धा बर्बरीक

बाड़ी धार अर्की में पांडवों से सम्बन्धित हिमाचल का सुप्रसिद्ध मेला बाड़ी मेला हिडिम्बा पौत्र बर्बरीक की स्मृति में हर वर्ष आषाढ़ सक्रांति को आयोजित होता है। बाड़ी-धार को 'शिवबाड़ी' भी कहा जाता है। बाड़ा देव मंदिर में प्राचीन काल से शिवलिंग स्थापित मिलता है, जिससे लगता है कि यहां राज व्यवस्था से पूर्व साधु-संत आते -जाते रहते थे। लोक-परम्परा से पाण्डव विभिन्न स्थानों-जंगलों में गुप्त वनवास काटने के समय एक स्थान पर शाम को मिला करते थे, वह स्थान धार की ऊँची चोटी बाड़ीधार ही था!
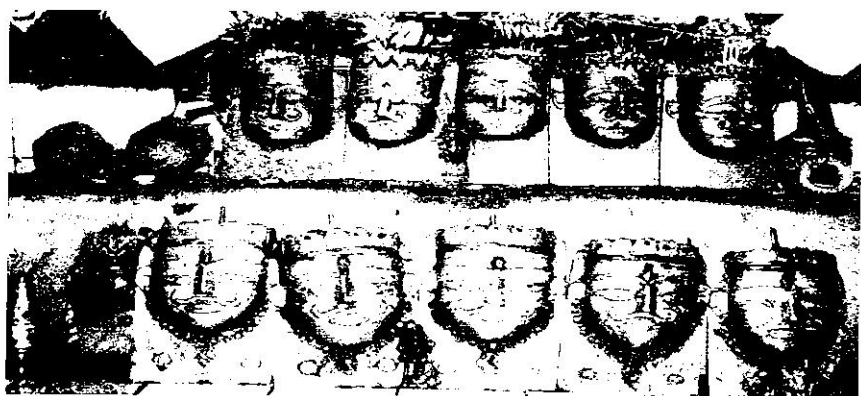
कहते हैं पांडवों ने यहां शिवलिंग स्थापित किया था। बाड़ी मेले की परम्परा बाघल रियासत के प्रारम्भिक राजाओं के समय से मिलती है। स्वाभाविक है कि धारानगरी (मालवा) से यहां आये परमार वंश के शासक मध्यकाल में धार्मिक परम्पराओं को भी यहां प्रचलित करते। राजस्थान, मध्यप्रदेश के क्षेत्रों में बर्बरीक जिसे 'श्याम् खाटू' के नाम से पूजा जाता है उसकी पूजा-अर्चना यहां प्रारम्भ हुई थी। पाण्डवों की महागाथा बाघल क्षेत्र के बाड़ीधार में सदियों से मेलों-पर्वों के रूप में प्रचलित है। पाण्डवों की पवित्र

मिलन - स्थली बाड़ीधार में पाण्डव - मिलन एवं पराक्रमी राक्षसी पुत्र बर्बरीक की याद में बाडी मेला मनाये जाने की परम्परा है।

यद्यपि हिड़िम्बा पौत्र बर्बरीक की कोई मूर्ति यहां स्थापित नहीं है, तथापि बाड़ा देव के नाम पर होने वाले अनुष्ठान, संगीत, पशु बलियां, राक्षस पूजा, भीम - हिडिम्बा प्रसंग पाण्डवों से सम्बन्धित देवता एवं महाभारत के शीश - दानी, कलियुगी कृष्ण के अवतार बर्बरीक की तरफ संकेत करते हैं तथा उसकी वीरता को कथाएं बुनते हैं।

पाण्डव – पराक्रम कथाएँ

समस्त हिमाचल प्रदेश में पाण्डवों से सम्बन्धित अनेक देव स्थल तथा देवताओंकी कथाएं प्रचलित हैं। हिमाचल में मण्डी के कमरू नाग शिखर पर यद्यपि कमरूनाग देवता है, लेकिन वह बर्बरीक का अवतार माना जाता है और उसकी आत्मा को बर्बरीक कहा जाता है। अनेक स्थानीय लोक कथाओं को देवता से सम्बन्धित अन्य प्रकार के वृतान्त भी हैं।

इस प्रकार के वृतान्त राजस्थान, हरियाणा, पंजाब आदि राज्यों में आज भी वर्तमान हैं, जिनका उल्लेख इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है। इसी प्रकार पाण्डवों के हिमालयी क्षेत्रों में विचरण के कारण माहूनाग, करसोग, एवं परयाब गांव (अर्की) वाले नाग देवताओं को भी पाण्डव - सहदेव माना जाता हैं। यहां तक कि बाडू बाडा देव (वीरसेन) जिसे उसके वंशज इसे सहदेव का वंशज मानते है - इस

कुल्लू में देवी हिडिम्बा का प्रख्यात मंदिर तथा अनेक स्थानों में देवस्थल, हैं। चम्बा, लाहौल, शिमला, कांगडा, बिलासपुर अदि क्षेत्रों में पाण्डवों से सम्बन्धित ऐतिहासिक मंदिर पाये जाते हैं। कांगड़ा का 'लाखामण्डल' महाभारत की कथा का बखान करता है।

बाड़ीधार में किसी एक पाण्डव को बाड़ा देव मानना उचित प्रतीत नहीं होता जैसा कि किसी एक पाण्डव की मूर्ति यहां अकेली स्थापित नहीं है (प्राय: पांचों गांवो में पाण्डवों की धातु की मूर्तियां मिलती हैं तथा सौ कौरवों

के मोहरे हैं केवल गांव बुईला के देवालय में एक कृष्ण का अष्टधातु का मोहरा भी वर्तमान है।

बाड़ा देव का अभिप्राय

बाड़ा देव का अभिप्राय: 'बड़ा' या शक्ति शाली देवता माना जाता है। स्थानीय भाषा में बाड़ लगाने का सांस्कृतिक अभिप्राय किसी स्थान विशेष का कब्जा है। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार दाड़ला-सूलीधार में बाघल राजाओं से पूर्व एक मावी निरंकुश शासक था। उस 'मावी' ने 12 कोस में बाड़ लगाई थी, यानी कब्जा किया था वह मनमाने ढंग से लोगों पर राज करता था तथा अत्याचार करता था। इस प्रकार के निरंकुश शासक अपने-अपने क्षेत्रों में बाड़ लगा देते थे। पहाड़ों में इस प्रकार 'बाड लगाने' का अभिप्राय 'सुरक्षित स्थान' अथवा सम्बन्धित राजा के कब्जे वाले क्षेत्र से होता था। इसी प्रकार धींग, रूण्ड, मावी आदि लड़ाकू कबीलों ने अपनी-अपनी ताकत के अनुसार पहाड़ों में कब्जे किये थे। इस प्रकार के किस्से बघाट, महलोग, कुठाड़, सकेत, धामी आदि में प्रचलित रहे हैं। अत: बाड़ादेव का अभिप्राय एक बहुत बड़े क्षेत्र के देवता से माना जा सकता है।

बाड़ादेव वृतान्त: पाण्डव वनवास स्मृति

महाभारत युग के पश्चात भारतीय इतिहास की रूपरेखा प्राचीन मन्दिरों, भग्नप्राय: राजमहलों, काव्य ग्रंथों और विभिन्न कलाओं के माध्यम से स्पष्ट होती है। हिमालयी संस्कृति में प्रमुख रूप से अति प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों को पांडवों से जोड़ लिया जाता है। पाण्डवों का वनवास समस्त पहाड़ी प्रदेश में एक समान जनश्रुतियों तथा लोक विश्वासों का आधार है। महाभारत युद्ध में समस्त देश के योद्धा काम आये थे 18 अक्षौहिणी सेना में से कोई भी योद्धा नहीं बचा। शेष बचे थे, तो केवल पांच पांडव तथा योगेश्वर कृष्ण! तत्कालीन पर्वतीय राजाओं में त्रिगर्त (कांगड़ा) का संशप्तक राजा सुशर्मा कौरवों की तरफ से लड़ता हुआ सेना सहित युद्ध में मारा गया था। दूसरी ओर राजा विराट जिसकी सीमाओं में सिरमौर तथा शिमला का क्षेत्र सम्मिलित था-

पाण्डवों ने गुप्तवास का समय भी विराट के राज्य क्षेत्र में छद्मवेष में काटा था। हिमाचल के आदिवासी किन्नर, किरात तथा राक्षसों ने भी किसी पक्ष में मिलकर युद्ध किया था।

पांच पांडवों की कांस्य प्रतिमाएँ – बुईला सरयांज

हिमाचल के अनेक क्षेत्रों में पाण्डव कालीन संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। कुल्लू में हिडिम्बा, किन्नौर में हिडिम्बा तथा वाणासुर की देव – सन्तानें, रामपुर बुशहर में पांडवों की गुफाएं, बिलासपुर में पंचगाई का तालाब, कांगड़ा का लाखामण्डल, सुकेत में कर्ण का अवतार माहूनाग तथा अनेक देव स्थान पाण्डव – संस्कृति की स्मृतियां हैं। वनवास के अतिरिक्त पाण्डव युद्ध के पश्चात् हिमाचल की ओर महागमन कर गये थे, अतः इनसे सम्बन्धित पुण्यस्मृतियों का पाया जाना स्वाभाविक है। महाभारत में अर्जुन के 'किम्पुरूष देश' (किन्नौर) से 'हाटक' देश जाने का वर्णन मिलता है। हिमाचल के इन बीहड़ों में इन पराक्रमी राजकुमारों ने अनेक राक्षसों को मारा था। हिडिम्ब और बकासुर ऐसे ही राक्षस थे। अर्जुन ने वनगमन के समय मणिपुर नरेश की कन्या चित्रांगदा से विवाह किया था। भीमसेन ने हिडिम्ब को मार कर उसकी बहिन हिड़िम्बा से गन्धर्व विवाह किया था।

पाण्डवों से सम्बन्धित मेले और त्यौहार हिमाचल में मनाये जाते हैं। सोलन जनपद के अर्की क्षेत्र में बाड़ादेव का उत्सव अर्थात् "बाड़ी मेला" पाण्डवों से सम्बद्ध पारम्परिक उत्सव है।

अर्की से लगभग 15 किलोमीटर दूर 7000 फुट ऊँची बाड़ीधार पर बाड़ा देव का मंदिर है। सदियों से इस रमणीक धार पर आषाढ़ संक्रान्ति को समीपवर्ती गाँवों से पाँचों पाण्डवों की सजी पालकियाँ बाड़ा देव मन्दिर के प्रांगण में मिलन हेतु एकत्रित होती हैं। कहते हैं वनवास के समय पाण्डव दूर – दूर घूमने के पश्चात नियत दिन यहाँ एकत्रित होते थे।

बाड़ा देव कौन हैं ? इससे सम्बन्धित जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। "बाड़ी" का अर्थ है – "एक सुरक्षित वन वाटिका" अथवा "आरक्षित क्षेत्र"। आदिकाल से यहाँ शिवस्थली रही है। इसे शिव की बाड़ी भी कहा

जाता है। किसी पौराणिक राजा की मूर्ति की स्थापना से इसे ही 'बाड़ी देव' और फिर 'बाड़ा देव' कहा जाने लगा।

शिमला की ऊँचाई के बराबर होने के कारण बाड़ीधार की विस्तृत घाटी में देवदार, बान तथा चील के मोहक जंगल हैं। शरद ऋतु में बर्फीली घाटियाँ उच्च हिमालय का स्मरण करवा देती हैं। कहते हैं अंग्रेज सर्वप्रथम यहाँ गर्मी की राजधानी बनाने लगे थे किन्तु बाड़ा देव के प्रकोप से ऐसा न कर सके। बाड़ीधार तक फैला विस्तृत क्षेत्र, बिलासपुर नगर, सुकेत, नालागढ़ तथा कालका तक का क्षेत्र दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन शासकों को यह स्थान सुरक्षित और सुन्दर लगा होगा इसलिए यहाँ किले का निर्माण भी किया गया था जिसे 'बहादुर पुर गढ़' के नाम से जाना जाता था। गोरखों ने इसे बिलासपुर नरेश से छीनकर यहाँ कब्जा किया था। यहाँ अर्की क्षेत्र की सीमाएँ कहलूर से मिलती थी। यह अर्की राजा द्वारा किसी रानी के साथ बिलासपुर राजा को दहेज में दिया गया था।

बाड़ादेव से सम्बन्धित यहाँ यह लोक विश्वास प्रचलित हैं – कहते हैं कि पाण्डव महाभारत युद्ध में बन्धु – बान्धवों के विनाश के पश्चात प्रायश्चित के लिए हिमालय क्षेत्र में मानसरोवर तक आये थे। वे इस क्षेत्र से होकर गुजरे थे। बाड़ीधार पर इन्होंने शिवस्थली के साथ राक्षस – राजकुमार 'बर्बरीक' की मूर्ति स्थापित की थी। बर्बरीक हिडिम्बा – भीमसेन का पौत्र था जो पैदा होते ही युवा हो गया था।

इस प्रसंग के अनुसार महाभारत से पूर्व जब कौरव – पाण्डव सेनाओं में सैन्य विधान हुआ तो समस्त भारत के राजा किसी न किसी पक्ष में मिले थे। बर्बरीक एक ऐसा ही योद्धा था। वह धनुर्विद्या में पारंगत था। उसने गुप्त क्षेत्र में नव – दुर्गाओं की तपस्या से वरदान प्राप्त किया था। वह भी महाभारत युद्ध में सम्मिलित होने के लिए कुरूक्षेत्र की तरफ चला। मार्ग में उसकी भेंट श्री कृष्ण से हुई। कृष्ण ने उस तेजस्वी युवक से पूछा कि तुम किस पक्ष से लड़ोगे ? बर्बरीक ने उत्तर दिया कि "जो योद्धा बलवान होगा मैं उसे मारकर इन्द्रप्रस्थ का राजा बनूंगा।" कृष्ण को इस उत्तर से बड़ा आश्चर्य हुआ।

कृष्ण ने उसकी वीरता की परीक्षा लेनी चाही। युवक ने कृष्ण के पराक्रम तथा योग विद्या के विषय में सुना था। कृष्ण ने बर्बरीक को धनुर्विद्या का चमत्कार दिखाने को कहा। बर्बरीक ने आत्म विश्वास से कहा - "मैं इस अश्वत्थ वृक्ष के समस्त पत्तों को एक ही बाण से छलनी कर सकता हूँ।"

कृष्ण ने चुपके से एक पत्र तोड़कर अपने पाँव के नीचे छुपा दिया और युवक को तीर छोड़ने को कहा।

बर्बरीक ने शर - संधान किया। तीर प्रत्येक पत्ते को छलनी करता कृष्ण के पाँवों के नीचे दबे पत्ते को भी छेदता हुआ बर्बरीक के पाँवों के पास लौट आया। कृष्ण हतप्रभ हो गये। कृष्ण ने जान लिया कि यह युवक राक्षसी माया से अर्जुन को भी आहत कर सकता है। उन्होंने कूटनीति से युवक से पूछा - 'वीर' तुम महाभारत युद्ध में क्यों लड़ना चाहते हो ? अभी तुम नादान युवक हो। इस महायुद्ध में बड़े - बड़े महारथी, अतिरथी और रथी उपस्थित हो रहे हैं।''

वीर युवक ने उत्तर दिया - "पराक्रमी कृष्ण, में समर भूमि में युद्ध कौशल दिखाना चाहता हूँ और उससे बढ़कर महाभारत के समस्त योद्धाओं का पराक्रम देखना चाहता हूँ।" कृष्ण बोले - वीर युवक, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम्हें मैं अपने योग क्षेम से सारा महाभारत का युद्ध दिखा दूँगा, किन्तु एक शर्त है ...

"क्या शर्त है, महाराज कृष्ण?" बर्बरीक ने उत्सुकता से पूछा। "इस युद्ध मे भारतवर्ष के अतिरिक्त दूसरे राष्ट्रों के वीर भी सम्मिलित होंगे। भारतवर्ष का ऐसा कोई नरेश नहीं हैं जो युद्ध में भाग न ले रहा हो। बर्बरीक मैं बिना शस्त्र उठाए सत्य की रक्षा के लिए पाण्डवों को विजयी बनाऊँगा। किन्तु एक वीर की बलि युद्ध से पूर्व यमराज को देनी आवश्यक है।"

कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र बर्बरीक के सामने उठाया ही था कि बर्बरीक विस्मृत सा हो गया। उसे कृष्ण के शरीर में सम्पूर्ण विश्व दिखाई देने लगा। वह अपनी बलि देने को तत्पर हो गया। कहते हैं कि बर्बरीक की गर्दन एक ऊँची धार की पहाड़ी पर काटकर एक लम्बे दंड पर बाँध दी गयी थी जहाँ से उसने महाभारत का पूरा युद्ध देखा। युद्ध समाप्ति पर कृष्ण पाण्डवों

सहित इस पहाड़ी पर आये और बर्बरीक से युद्ध की हार-जीत के विषय में पूछा। बर्बरीक के सिर ने उत्तर दिया- "इस युद्ध में न कोई जीता, न कोई हारा। मैंने केवल यही देखा कि आगे-आगे कृष्ण का सुदर्शन चक्र था और पीछे खून से भरा द्रौपदी का खप्पर।"

बर्बरीक की अन्त्येष्टि करने के बाद पाण्डव लौट गये। बर्बरीक की पुण्य स्मृति में ही बाड़ी मेला मनाया जाता है यहाँ के लोक विश्वास के अनुसार पाण्डव गुप्तवास के मध्य इस धार के समीपवर्ती पाँच विभिन्न ग्रामों-सरयांज में भीमसेन, अन्दरौली में अर्जुन, कोयला स्नोग में युधिष्ठिर, देवथल में सहदेव तथा भेलगाँव में नकुल रहते थे। ये रात्रि को बाड़ीधार पर इकट्ठे होते थे।

आषाढ़ संक्रान्ति को बाड़ा देव मन्दिर में परम्परा से पाण्डवों की पालकियाँ मिलन के लिए आती हैं। संक्रान्ति की पूर्व संध्या पर यहाँ पूरी रात कीर्तन जागरण होता है। इस कार्यक्रम में सारी रात्रि देवगीत गाये जाते हैं। व्यूला एवं देवथल मन्दिरों में इसी दिन देव के पुजारी और लोग देव वाद्यों को बजाते बाड़ीधार को प्रस्थान करते हैं और सुबह वापिस लौटते हैं। पाँच गाँवों में पाण्डवों की मूर्तियां रथों में स्थापित हैं। ये गाँव हैं। ब्यूला, देवथल,कोयल,स्नोग,भेलगाँव और अन्दरौली। ये मोहरें स्वर्ण मण्डित, अष्टधातु, चांदी तथा कांस्य के हैं पाण्डवों के अतिरिक्त कौरव सेना के सौ-सौ लोहे के मोहरे ब्यूला,देवथल,कोयला,स्नोग के मन्दिरों में तीरीयों में रखे गये हैं।

ये मोहरे स्वर्णमण्डित, अष्टधातु, चांदी तथा कांस्य के हैं, पाण्डवों के अतिरिक्त कौरव सेना के सौ-सौ धातु के मोहरे ब्यूला,देवथल,कोयला,स्नोग के मन्दिरों में तीरियों में रखे गये हैं। इन मोहरों को वर्ष में मेले के दिन एक बार ही निकाला जाता है। कोयला स्नोग मन्दिर में एक मोहरा अधिक है जो भगवान कृष्ण का है। शेष स्थलों में कौरव-पाण्डवों के मोहरे प्राय: एक समान है। मन्दिरों के प्रांगण में दरवाणी अथक भैरों की प्रस्तर मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

महाभारत काल में पश्चिमी हिमालय के कुल्लू, लाहौल-स्पीति क्षेत्र में राक्षस जाति रहती थी। इन्होंने चूंकि महाभारत में भाग लिया था अत: बाड़ा

देव से सम्बन्धित अन्य राक्षस सेना के प्रस्तर – प्रतीक बाड़ीधार में पाये जाते हैं। पाण्डवों के मोहरे कुछ समय पूर्व चोरी हो गये थे, किन्तु नए मोहरों को पुनस्थापित कर दिया गया था।

बाड़ीधार से 3 किलोमीटर नीचे नाले में राक्षस देवों, जो पाण्डवों के पक्ष में महाभारत में लड़े थे, उनकी गुफाएँ हैं। राक्षस गुफा में भैरों तथा रक्षिण (राक्षिणी) की प्रस्तर मूर्तियाँ विद्यमान हैं। भैरों (संभवत: घटोत्कच) एक शेर के गले में जंजीर डाले भयानक आकृति वाला देव है। शेर के नाक में लोहे का कड़ा है। मेले वाले दिन इसे बलि अवश्य देनी पड़ती है। रक्षिण भी इस बंद गुफा में भैरो के साथ विराजमान हैं। ये देवता मेले के दिन मश्वाड़ी देव द्वारा पत्थर की शिला हटाने पर गुफा से बाहर निकलता है। इनके साथ अन्य राक्षस दल भी बाहर निकलता है। इन असुर देवों का इस क्षेत्र में इतना आतंक रहा है कि गुफा वाली तलहटी में कोई अकेला व्यक्ति नहीं जा सकता था। इन्हें विधिवत् बलि देने के बाद ही यहाँ घास अथवा ढोर – डंगर चराने जाया जा सकता था।

पूजा – विधान

आषाढ़ संक्रान्ति के दिन अर्जुन के निवास स्थान अन्दरौली – घणाघूघाट की बांवड़ी से एक लौटा पवित्र जल लेकर देव का पुजारी बाड़ी प्रस्थान करता है। यह स्थान बाड़ीधार से लगभग 16 किलोमीटर दूर है। पुजारी जब ब्यूला (भीमसेन के निवास) लौटा लेकर पहुँचता है तब जन समुदाय देवरथ के साथ बाड़ी प्रस्थान करता है। लोटे के पहुँचने का अभिप्राय अर्जुन के पहुँचने से है। देव वाद्य ढोल, नगाड़े , रणसिंहा तथा टाकुली के घोष से घाटियाँ गूंजती चलती हैं। जब यह 'पूजा' बाड़ी से करीब एक किलोमीटर नीचे मश्वाड़ी देव की घाड़ (ढांक) में पहुँचती हैं तो नीचे नाले में स्थित राक्षस देवों को बाड़ी यज्ञ में आने के निमन्त्रण के रूप में देवता का आदमी ऊँची – ऊँची आवाजें लगाता हैं। इन आवाजों के मध्य देवता के बाजे जोर – जोर से बजाये जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि कोई इन आवाजों को सुन लेता है तो तत्काल मर सकता है। कहते हैं कुछ वादक

इससे पूर्व मर चुके हैं। ये आवाजें पहले दिन रात्रि को भी निमन्त्रण के रूप में इन राक्षसों को लगाई जाती हैं

रूप में देवता का आदमी ऊँची - ऊँची आवाजें लगाता हैं। इन आवाजों के मध्य देवता के बाजे जोर - जोर से बजाये जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि कोई इन आवाजों को सुन लेला है तो तत्काल मर सकता है। कहते हैं कुछ वादक इससे पूर्व मर चुके हैं। ये आवाजें पहले दिन रात्रि को भी निमन्त्रण के रूप में इन राक्षसों को लगाई जाती हैं।

देवस्थल (जिसे सहदेव का स्थल माना जाता है) वाली पूजा, तब बाड़ी प्रस्थान करती है जब ब्यूला वाली पूजा के वाद्यों की आवाजें सुनाई देती हैं। यह स्थान इस घाटी से 2 कि. मी. दूर है। भेलगांव (यानी नकुल का स्थान) वाली पूजा देवथल की पूजा के साथ बाड़ी पहुँचती है। कोयला, स्नोग (यानी युधिष्ठिर का स्थल) जो बाड़ी से लगभग 8 कि. मी. दूर है, वाली पूजा प्रातः चलकर दोनों पूजाओं के सामने पश्चिमी घाटी में रूक जाती है। पांचों पूजाएं 3 बजे सांय बाड़ादेव स्थल पर पहुँचती है जहाँ सजी पालकियों में तेजपूर्ण पाण्डवों के मोहरों के समक्ष असंख्य नर नारी देवता का खेल खेलते हैं। इस देवता के खेल में देवता की छाया व्यक्ति के तन - मन पर इस प्रकार प्रभावी होती है कि उसका प्रत्येक अंग कांपता है तथा वह पछाड़ें खाकर सिर - बाजू को झटकता है। चीखों, सीटियों तथा ढोल - नगाड़ों की आवाजों से वातावरण गूंज उठता है। लोग नतमस्तक होकर देवता को भेंट चढ़ाते हैं। सन् 1956 तक हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की तरह देव को भैंसे की बलि दी जाती थी। बलि के पश्चात कोई भी व्यक्ति देव की परिधिस्थल में नहीं ठहर सकता था। एक ऐतिहासिक उल्लेख के अनुसार 1820 ई0 में जब एक अंग्रेज अधिकारी बाड़ी मेले के अवसर पर बाड़ीधार आया था तो उसने नर - बलि को अपनी आँखों से देखा था। कहते हैं रात्रि को यहाँ राक्षसी माया फैल जाती है। इसके बाद यह स्थान बिल्कुल निर्जन हो जाता है। लोग संतुष्ट होकर विभिन्न वन - वीथियों से अपने घर की तरफ लौट जाते हैं।

बूढ़ा देई : हिडिम्बा का लोक देवी स्वरूप

एक पौराणिक कथानुसार जब पाँच पाण्डव अज्ञातवास व्यतीत कर रहे थे तब एक दिन पाण्डवों के अनुज भ्राता सहदेव जिन्हें काम देव का अवतार भी कहा जाता है, एक दिन सघन जंगल में धूणा जगाने के लिए लकड़ियां इकट्ठी करने के लिए भटक रहे थे। शाम के धुन्धलके में, रात्रि होने में अभी थोड़ा समय शेष रहता था, तभी सामने से एक नवयौवना को इस वीरान जंगल में अकेली देख सहदेव रोमांचित हो उठे। आकाश की ओर देखा तो अभी चन्द्रमा की चन्द्रिका भी नहीं छिटकी थी, लेकिन कामदेव के अवतार सहदेव को ऐसा आभास होने लगा कि रात्रि के गहन अन्धेरे में खिल-खिलाते चाँद की किरणे उनकी आँखों एवं बदन को बेंध रही हों। नारी का गोरा बदन, विशाल लम्बे केश, वक्षस्थल उभरा हुआ, मदमाती नारी देह उनके शरीर में खुमार पैदा कर रही थी। कामदेव के अवतार सहदेव को ऐसा आभास होता जा रहा था कि वह इस सम्मोहन के जाल में डूबता रहे हो, परन्तु धैर्य धारण करते हुए उसका विवेक जाग उठा और सहसा हो मुंह से निकल पड़ा - देवी .. .. तुम कौन हो ....? तुम्हारा इस घोर रात्रि बेला में इस सुनसान जंगल में आने का क्या प्रयोजन है ?

यौवन भरी मदमाती नारी ने बड़े सहज स्वभाव में खिलखिलाते हुए उत्तर दिया हां ... हा सहदेव, तुम भोले और नादान हो ! .... क्या तुम नहीं जानते हो कि इस समय अकेली नारी का वीराने में आने का क्या औचित्य है ? हां ! मैं तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि हम दो बहनें हैं जो इस क्षेत्र की कुलदेवियां हैं जो 'कुलजा' के रुप से पूजी जाती हैं। तुम्हें हमारी शरण में रहना होगा। तुमने अभी मेरे सौन्दर्य को नहीं देखा है। मैं यक्षिणी हूँ। यक्षिणी! सहदेव .....! तुम्हें मेरे यौवन का रसपान करना होगा, मैं बहुत दिनों से तुम्हारी खोज में थी। सम्मोहन में डूबते हुए कामदेव के अवतार सहदेव ने कहा - नहीं .... नहीं .... देवी.... मैं असमर्थ हूँ .... देवी मैं असमर्थ हूँ .... मैं पाण्डव हूँ ! मैंने

अपने अन्य भ्राताओं के साथ ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया है। यक्षिणी ने कहा मैं असीम शक्ति से सम्पन्न हूँ। मैं आकाश में उड़ सकती हूँ, मैं आग को बाँध सकती हूँ, मैं घोर अन्धकार को अपने तेज से दूर कर सकती हूँ, मैं तूफान मचा सकती हूँ, मैं रूप बदल सकती हूँ, मैं यक्षिणी हूँ, यक्षिणी!

सहदेव नहीं – नहीं ..... मैं असमर्थ हूँ ....'' मैं असमर्थ हूँ .... सहदेव के शब्द गले से अटके जा रहे थे। तभी वह सुन्दरी खिल – खिलाती हुए बोली – मैं वचन देती हूँ, मैं एक वर्ष तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी। उसके पश्चात तुम्हें मेरे साथ रहना होगा।''

यक्षिणी ऐसा कहते हुए अपनी योगमाया से सहदेव को रात्रि के घोर अन्धकार में वशीभूत करके, बाजूओं से पकड़ कर आकाश में उड़ते हुए सतलुज नदी के पार सुकेत नामक स्थान पर ले गई। उसे मन्त्र द्वारा नर से भेडू (मेमना) बना दिया और एक गौशाला में बन्द कर दिया।

जब पाण्डव शाम को इकट्ठे हुए तो सहदेव के रात को यक्षिणी देर तक वापस न आने के कारण युधिष्ठिर का माथा ठनका। हो न हो कोई यक्षिणी उसे अपने प्रपंचजाल में फंसा कर न ले गई हो ! पाण्डव ढूंढते – 2 थक गए लेकिन सहदेव का कहीं पता न चला। एक दिन भीम ढूंढते – 2 सुकेत के 'बाड़ू' नामक स्थान पर पहुँच गए जहाँ पर यक्षिणी द्वारा सहदेव को भेड़ू (खाड़ू) बना कर गऊशाला में रखा गया था। भीम जब बाहर से आवाज लगाते तो भेड़ू भीम की गर्जना भरी आवाज सुनकर प्रत्युत्तर देता। भीम को संशय हो गया कि हो न हो यह सहदेव ही है, जिसे किसी ने नर से भेड़ू बना दिया है। भीम ने फिर आवाज लगाई और आवाज लगाते – लगाते गऊशाला तक पहुँचे। जब भीम ने गऊशाला का दरवाजा खोला तो भेड़ू अपनी आवाज में व्यथा सुनाने लगा। भीम ने बूढ़ी स्वामिनी से इसका कारण जानना चाहा तो बुढ़िया भीम के विशालकाय शरीर व क्रोध को देखकर थर – थर काँपने लगी। भीम ने उसे केशों से पकड़ा ही था कि बुढ़िया भीम से अपने जीवन की रक्षा की भीख माँगने लगी। उसने स्वीकार किया कि उसने ही सहदेव को बलपूर्वक उठा लिया था क्योंकि वह उससे शादी करना चाहती थी। यक्षिणी अपने पूर्व रुप में आ गई।

यक्षिणी ने मन्त्र द्वारा सहदेव को भी पूर्व - स्थिति में ला दिया। भीम ने यक्षिणी और सहदेव को अपने पराक्रम द्वारा बाड़ीधार ले जाकर धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष पेश किया और यक्षिणी रोती - बिलखती पलकें झुकाए धर्मराज युधिष्ठिर के पाँव पर गिर पड़ी और अपनी गलती का प्रायश्चित कर जीवन दान मांगने लगी। धर्मराज युधिष्ठिर उसे रोने - बिलखने न देख सके और उनका कोमल हृदय करुणा से भर आया और उसे तीन वचन पूरा करने पर जीवन दान देने के लिए

राजी हो गये।धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा - प्रतिज्ञा करो कि तुम पाण्डवों को आज के बाद बुरी नजर से नहीं देखोगी और पाण्डव तुम्हें बहन के रूप में स्वीकार करते हैं।

यक्षिणी - हाँ, स्वीकार करती हूँ। दूसरा वचन, ''प्रतिज्ञा करो कि तुम पाण्डवों की युद्ध के समय सहायता करोगी''। यक्षिणी - हाँ, मैं स्वीकार करती हूँ। यक्षिणी के स्वीकार करते ही उसका मुख युद्ध - क्षेत्र की ओर किया गया। तीसरा वचन - यक्षिणी, स्वीकार करो कि तुम आज के बाद किसी भी प्रकार का प्रपंचजाल या षड़यन्त्र नहीं रचोगी। यक्षिणी...हाँ, स्वीकार करती हूँ मैं किसी भी प्रकार का माया जाल या षड़यन्त्र नहीं रचूंगी। यक्षिणी - हाँ, स्वीकार करती हूँ। दूसरा वचन, प्रतिज्ञा करो कि तुम पाण्डवों की युद्ध के समय सहायता करोगी। यक्षिणी - हाँ, मैं स्वीकार करती हूँ। यक्षिणी के स्वीकार करते ही उसका मुख युद्ध क्षेत्र की ओर किया गया। तीसरा वचन - यक्षिणी, स्वीकार करो कि तुम आज के बाद किसी भी प्रकार का प्रपंचजाल या षड़यन्त्र नहीं रचोगी। यक्षिणी...हाँ, स्वीकार करती हूँ मैं किसी भी प्रकार का माया जाल या षड़यन्त्र नहीं रचूंगी।

इस प्रकार उसे जीवन दान देकर उसी समय से यह दोनों देवियां पाण्डवों की बहनों के रूप में मानी जाने लगीं, जो प्राचीन तथ्यों के आधार पर लोक कथा में आज भी जीवन्त है। यही कारण रहा होगा कि बूढ़ादेई को पाण्डवों की बहन के रूप में लोग आज भी स्वीकार करते हैं। यक्षिणी कोई अन्य नहीं राक्षसी हिडिम्बा का रुप हो सकती है जो इस जनश्रुति में नामों की भिन्नता में सुरक्षित है।

एक दन्त कथा के अनुसार कहा जाता है कि एक बार समीपवर्ती क्षेत्र कुठाड़ रियासत का देव बीजू देव, बूढ़ादेई के सौन्दर्य से वशीभूत हो गया और उसे बाड़ीधार के मनोरम स्थल से रामशहर भगाकर ले गया। बूढ़ादेई को ढूंढते - 2 भीम रामशहर पहुँच गया भीम का बीजू देव के साथ घोर संग्राम हुआ। जब बीजू देव भीम के प्रहारों को सहन न कर सका तो वह अपनी जान बचाने के लिए एक बहुत बड़े पत्थर की ओट में जा छिपा। भीम ने भागते - 2 पीछे से पत्थर फेंके जिनकी चोटों को सहन न कर पाने के कारण बीजू देव वहाँ से भाग गया। भीम बूढ़ोदेई को वापिस बाड़ीधार ले आया। जो पत्थर भीम सेन ने बीजू देव के पीछे फेंके थे वे आज भी इस धार के शिखरों पर अटके हुए हैं। बूढ़ा देई के इस लज्जापूर्ण कृत्य को देखकर भीमसेन ने क्रोधित होते हुए उसके गाल पर एक जोर का तमाचा जड़ा जिससे बूढ़ा देई का मुँह टेढ़ा हो गया। बूढ़ादेई के भव्य मन्दिर की मूर्ति में यह तथ्य आज भी देखा जा सकता है। यही कारण रहा होगा कि आज भी मूर्ति का मुख टेढ़ा है। आदिकाल से यह मेला परम्परागत ढंग से मनाया जाता रहा है। पशु बलि के अतिरिक्त यह मेला अपनी प्राचीन स्मृति को संजोए इसी प्रकार मनाया जाता है। लोग बाड़ादेव को अपनी फसलों का रक्षक तथा इष्ट समझते हैं।

बदलते युग के मानव मूल्यों तथा विश्वासों के बावजूद भी बाड़ी मेला अपनी ऐतिहासिक स्मृति ''राक्षसों द्वारा पाण्डवों का युद्ध में साथ देना'' प्रतिपादित करता है।

शौली गाँव में बर्बरीक देव – स्थल

अर्की (बाड़ीधार) के अतिरिक्त शिमला जिले के शौल्ली गाँव के ऊपर जंगल में 'कोट पर्वत' पर बर्बरीक का प्रतीक चिन्ह एक लकड़ी का लम्बा दण्ड हैं। शौल्ली ननखड़ी से लगभग 12 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। शौल्ली से बर्बरीक के देवस्थल तक पहुँचने के लिए चढाई के रास्ते डेढ़ घण्टे का समय लगता है।

लकड़ी के दण्ड में बर्बरीक का मुखौटा है। लोगों के अनुसार बर्बरीक का धड़ बाड़ीधार (अर्की) में तथा सिर यहाँ स्थित है। मुखौटे की एक आँख

कौरवों की तथा दूसरी आँख पाण्डवों की है। महाभारत युद्ध में अर्जुन ने बर्बरीक को यहाँ दण्ड सहित फेंका था।

यहाँ कोट पर्वत पर हर 12 वर्ष बाद भूण्डा यज्ञ होता है। भूण्डा यज्ञ में यहाँ 101 बकरों की बलि बर्बरीक को दी जाती थी। जबकि बाड़ीधार में भैंसे का रक्त चढ़ाया जाता था। 'बर्बरीक ' राक्षसी - पुत्र था अत: इस प्रकार की बलियाँ प्राय: सभी राक्षस - देवों को दी जाती रही हैं। आज भी यहाँ बकरों की बलि देने का ढंग बड़ा अनोखा है। देवता का 'देऊआ'(पुजारी) काटे हुए बकरे को दोनों पैरों से उठाकर पहले मुँह से उसका खून पीता है फिर खम्बे की ओर एक - एक कदम चलता है। वह प्रत्येक कदम पर बकरे का खून पीता है। जब तक यह खून पीकर बेहोश न हो जाए तब तक वह बकरों का खून पीता रहता है।

आदिकाल में भूण्डा - यज्ञ की परम्परा पूरे क्षेत्र में चली आ रही है। पिछला भूण्डा 24 वर्ष बाद हुआ था। किसी परिस्थिति में 20 वर्ष बाद भी 'भूण्डा - यज्ञ' होता है। यह देवता की वाणी पर निर्भर करता है।

आश्चर्य तो यह है कि बर्बरीक के खम्बे के पास सूर्योदय के समय आना वर्जित है। भूण्डा - यज्ञ के अवसर पर पुलिस का प्रबन्ध होता है। कहते हैं कि सूर्योदय के समय देवता के पास आने वाले अनेक लोग पागल हो गये है या मर गये हैं। बाड़ादेव का मेला रामशहर (नालागढ़) क्षेत्र में भी इसी परम्परा की कड़ी है, जो आषाढ़ मास में धार्मिक उल्लास से मनाया जाता है। रामशहर की पहाड़ी से बाड़ीधार की पहाड़ी के बिल्कुल सामने उत्तर - दिशा में स्थित है।

बाड़ीधार की सामने वाली दक्षिण - पश्चिमी पहाड़ी पर धड़स्यांग परगना तथा अन्य पहाड़ी क्षेत्रों को घटोत्कच से सम्बन्धित किया गया है। पाण्डवों से सम्बन्धित लोक कथाएं यहाँ प्रचलित रही हैं। यहां के एक गांव में घटोत्कच का देवस्थल वर्तमान है जहां इसकी पूजा - अर्चना विधिवत की जाती है।

बूढ़ा देई – रक्षिणी अथवा हिडिम्बा का रूप

हिमाचल की प्राचीन संस्कृति प्रमुख रूप से शैवमत से सम्बन्धित हैं। पौराणिक सन्दर्भों से जुड़े अधिकांश लोक देवता महाभारत कालीन वीर – पुरूष हैं। पाण्डव अपने बाल्यकाल तथा वनवास में सम्पूर्ण हिमालय की वनस्थलियों में विचरण करते रहे। समस्त हिमालय क्षेत्र में पाण्डवों से सम्बद्ध देव स्थान एवं विभिन्न स्थानों से सम्बन्धित दन्त कथाएं अथवा लोक विश्वास प्रचलित हैं।

पाण्डवों में पराक्रमी भीमसेन ने वनवास के समय राक्षस हिडिम्ब को मारा था। महाभारत में उल्लेख है कि भीमसेन ने बकासुर और किर्मीर राक्षसों को भी मारा था। इन राक्षसों में हिडिम्ब हिमाचल के कुल्लू क्षेत्र से सम्बन्धित था। हिडिम्ब राक्षसों का राजा था और हिडिम्बा उसकी बहिन।

कुल्लू की जनश्रुतियों के अनुसार कुल्लू घाटी में तांदी नाम का राक्षस राजा था। वह रोहतांग दर्रे के पास रहता था। कैप्टन हरकोर्ट ने अपनी पुस्तक में कुल्लू नरेशों की वंशावली में इसका बड़ा रोचक वर्णन किया है। तांदी अन्य कोई नहीं हिडिम्ब राक्षस ही था। उसके साथ उसकी बहन हिडिम्बा रहती थी। अपने वनवास के समय भीमसेन इस अनुपम सुन्दरी हिडिम्बा के मोह – पाश में बंध गया। इससे तांदी को युद्ध में उसका सामना करने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। इस द्वंद्व – युद्ध में तांदी मारा गया और भीमसेन ने हिडिम्बा के साथ राक्षसी विवाह रचाया। भीमसेन से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था – घटोत्कच।

हिडिम्बा राक्षसी थी, जो मनुष्यों को भी खा जाती थी। वह कुल्लू घाटी की देवी थी जिसे प्राचीन काल से पूजा जाता रहा है। इसकी पूजा अनार्य जातियों की तरह थी इसलिए ब्राह्मण उसे देवी नहीं, मानवभक्षी राक्षसी मानते थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुल्लू राजाओं को उसने ही राजपाट दिया था। कुल्लू दशहरे के अवसर पर रघुनाथ जी की पालकी से पहले हिडिम्बा देवी की पालकी उत्सव में पहुँचती है। इसे कुल्लू में दादी के रूप में स्मरण किया जाता है। इसे यहाँ कुलजा का स्थान भी प्राप्त है।

जे हुच्चीसन एण्ड बोगल के एक विवरण के अनुसार कुल्लू का सर्वप्रथम विहंगमणिपाल (765 ई.) था जिसने कुल्लू की नींव डाली थी। जनश्रुति के अनुसार विहंगमणि पाल रानी और लड़के पच्छपाल के साथ कुल्लू जा रहा था। उसके साथ उसका पुरोहित उदयराम भी था। उसने पार्वतीघाटी में अनेक छोटे – छोटे शासकों को हराया। एक दिन अत्यन्त श्रम के पश्चात जगत सुख के पास एक चट्टान पर सोया था कि एक पण्डित ने उसके पांव की रेखाओं को देखकर उसके महान् भविष्य की घोषणा की। कुछ दिन बाद जगत सुख के पास जल्लोली जात्रा में विहंगमणि पाल अकेला जा रहा था कि रास्ते में एक वृद्ध औरत को देखा। उस वृद्धा ने उससे कहा कि वह भी इस पवित्र यात्रा में जाना चाहती है किन्तु चल नहीं सकती। विहंगमणि ने उसे अपनी पीठ पर उठाया। जब वे जूरा गाँव से बसवारा के पास पहुँचे तो वृद्धा ने छलांग मार दी और विहंगमणि पाल से कहा कि अब वह उसकी पीठ पर बैठ जाये। जब विहंगमणि ने संकोच किया तो वह बोली कि ''मैं इस क्षेत्र की देवी हिडिम्बा हूँ। मैं तुम्हें वरदान देती हूँ कि तुम इस देश के राजा बनोगे। विहंगमणि पाल ने कहा,''माँ यह कैसे सम्भव हैं ? मैं इन दिनों दरिद्र, असहाय तथा अकेला हूँ।'' हिडिम्बा ने कहा – कि ''तुम शावरी मन्दिर जगत सुख जाओ जहाँ मेला है, मैं तुम्हें वहीं मिलूंगी।''

विहंगमणि मेले में गया जहाँ उसे देवी दिव्य रूप में मिली जो उसके साथ – साथ चलने लगी। लोगों ने उसके राजसी तेज से चमकते व्यक्तित्व को देखकर "जै जै देवा" कहा। वहाँ किसी अन्य प्रसंग में वहाँ के तत्कालीन शासक ठाकुरों और सामन्तों की लड़ाई छिड़ गई। दोनों ओर से तलवारें चमकी जिसमें वे सब मारे गए और विहंगमणि पाल को राजा बनाया गया। हिडिम्बा अन्तर्धान हो गई। मनाली में डूंगरी के स्थान पर हिडिम्बा का आदि मन्दिर इस घटना का आज भी स्मरण करवाता है। इस मन्दिर के प्रांगण में शरणागत राजनैतिक भगौड़ों को 'दादी हिड़मा अथवा हिरमा' को शरणागत समझ कर कुल्लू नरेश क्षमा कर दिया करते थे।

डॉ. बी. आर. शर्मा के शोध प्रबंध में उल्लिखित है कि हिडिम्बा लाहुल में रहती थी और वाणासुर पश्चिमी तिब्बत का राजा था। वाणासुर की राज्य

सीमा में किन्नौर क्षेत्र भी सम्मिलित था। किन्नौर क्षेत्र की जनश्रुतियों के अनुसार वाणासुर ने देवी हिडिम्बा से विवाह किया था। वाणासुर ने 'हिरमा' को मुलट धार पर बलपूर्वक रोक लिया और राक्षस विवाह करके सुंगरा गाँव के पास एक गुफा में रहने लगा। वाणासुर ने भगवान् शंकर की तपस्या करने के पश्चात् सहस्त्र भुजाएं प्राप्त की थीं। हिडिम्बा - वाणासुर के 15 पुत्र - पुत्रियाँ हुए। इनमें प्रमुख महेशुर के अतिरिक्त पुत्र - पुत्रियाँ चण्डिका, उषा, चित्रलेखा, भावामेशुर, शुंगरा मेशुर, चगांव मेशुर, चगांव दुर्गा, बड़ाकंबादुर्गा, पुजाहरली तथा मेशुर आदि हैं। इन हिडिम्बा पुत्र - पुत्रियों ने सारा किन्नर क्षेत्र आपस में बाँट लिया। हिडिम्बा देवी किन्नर क्षेत्र के कण - कण में समाई हुई हैं। हिडिम्बा देवी से सम्बन्धित अनेक अतिप्राकृत कथाएं हिमाचल के क्षेत्रों में प्रचलित हैं। वैसे भी महाभारत के सभा - पर्व में राक्षसियों द्वारा रूप बदलने तथा आकाश में उड़ने के प्रसंग मिलते हैं। राक्षसियों को वरदान प्राप्त है कि जब वे गर्भ धारण करती हैं तब तत्काल ही उसको जन्म दे देती हैं।

सद्यो हि गर्भान् राक्षसस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च।
कामरूप धराश्चैव भवन्ति बहुरूपिका।। - महाभारत

इस अतिप्राकृत बल का ही कारण है कि हिडिम्बा को महा - चण्डिका का प्रतीक समझा जाता है। मंडी - सुकेत क्षेत्र के अन्तर्गत बाड़ूबाड़ा देव से संयुक्त "काली" तथा "रक्षिण " देवियां महाभयानकता का पर्याय मानी जाती है। बाड़ूबाड़ा देव कांगरी (अर्की) में देव की जात्राओं में रक्षिण की मूर्ति रथ के पीछे उल्टी लगाई जाती है। यदि इसे रथ में सामने लगाया जाये तो सभी जीवधारी भस्म हो सकते हैं या पागल हो सकते हैं - ऐसा विश्वास है। इसी काली के लिए सर्वप्रथम बकरे की बलि दी जानी आवश्यक होती है। प्राचीन काल में अनेक क्षेत्रों में नरबलि के प्रसंग इतिहास में मिलते हैं। मानव मांस खाने के कारण ही 'राक्षस' एक जाति मानी जाती है।

हिडिम्बा आकाश में उड़ सकती थीं। महाभारत में उल्लेख है -
अन्तरिक्षचरी ह्यस्मि कामतो विचरामि च।
अतुलामापनुहिं प्रीति तत्र तव मया सह।। 30 सभा.।।

आकाश में उड़ने की इस क्षमता का वर्णन सोलन जनपद में बाड़ादेव की सहायक देवी "रक्षिण" से सम्बद्ध जनश्रुति में परिलक्षित होती है। "रक्षिण" राक्षिणी शब्द का साम्यरूप है, जिसका अर्थ है - राक्षसी। बाड़ादेव को हिडिम्बा पौत्र बर्बरीक का देवरूप माना जाता है। महाभारत के युद्ध से पूर्व कृष्ण ने कूटनीति से इस वीर युवक की बलि दी थी। उसके सिर को एक लम्बे दंड पर एक पहाड़ी पर लटका दिया गया था। क्योंकि बर्बरीक ने महाभारत का युद्ध देखने की इच्छा व्यक्त की थी। कृष्ण ने योगमाया से उसे युद्ध के अन्त तक जीवित रखा था। इसी राक्षस राजा से मिलने के उपलक्ष्य में 5 विभिन्न गाँवों से पाँचों पाण्डवों की पालकियां बाड़ीधार पर आती है तथा "बाड़ी मेला" मनाया जाता है।

रक्षिण अथवा हिडिम्बा से सम्बद्ध अर्की क्षेत्र में एक जनश्रुति प्रचलित हैं। कहते हैं बाड़ीधार के घने जंगल में पाण्डवों में सबसे छोटे भाई सहदेव को रात के गहन अन्धकार में रक्षिण ले उड़ी थी। उसने सहदेव को सतलुज के पार बाड़ूबाड़ा नामक सीनि में भेड़ू बना दिया था। बाद में भीमसेन ने बल से घबराकर रक्षिण ने उसे पूर्ववत् स्थिति में ला दिया था। इस कथा से पाण्डव भीमसेन और हिडिम्बा के प्रेम प्रसंग की लोक प्रचलित व्याख्या मिलती है।

देवी हिडिम्बा की पूजा में प्राचीन समय से नर बलि दी जाती रही है। इस विराट यज्ञ आयोजन में लाखों रूपये की सामग्री खर्च की जाती थी। सन् 1962 में निर्मण्ड गाँव में हुये "भूण्डायज्ञ" में 30 मन जौ का हवन हुआ था। शिमला जिले में यूं तो प्रति दो वर्ष बाद "भूण्डा" उत्सव प्रत्येक परिवार में व्यक्तिगत तौर पर मनाया जाता है। इसमें चार दिन तक मेहमानों को घर पर बकरे, भेड़ू आदि का मांस परोसा जाता है। किन्तु बड़ा "भूण्डा यज्ञ" 12 वर्ष बाद आयोजित किया जाता है।

भूण्डा यज्ञः – हिरमा देवी की स्मृति में होता है। भूण्डा यज्ञ के लिए बलि का व्यक्ति (बेड़ा) 12 वर्ष पूर्व तैयारी करता था। इसके परिवार के लिए सारे क्षेत्र की की जनता पर्याप्त धन देती थी। इसे अच्छी सामग्रियां खिलाकर हृष्ट - पुष्ट किया जाता था। वह बेड़ा बलि हेतु 6 मास पूर्व एक

रस्सी बाँटना शुरू करता था। बलि स्थान में ढलानदार जगह में ऊपर से लगभग 2000 फुट नीचे की ओर दो खम्बों में बन्धी रस्सी से लटकता हुआ पार होने का प्रयत्न करता था। उसके बराबर सन्तुलन के लिए उसके पांवों से बकरे की खाल की थैलियों में मिट्टी भरकर बाँधा जाता था। इस मध्य पहाड़ी वाद्य नर सिंहा, ढोल, टाकुली तथा शंख बजाकर भीषण घोष किया जाता था। इससे सम्पूर्ण वातावरण दहशतपूर्ण और भयानक बन जाता था। असंख्य लोग काँपते हुए देवता के विशेष खेल में चीखें - सीटियां मारते तथा सिर बाजू झटकते थे। इस वातावरण में बेड़े को आत्म विस्मृति का अनुभव होता तथा वह असन्तुलित होकर आत्मिक प्रेरणा से गिर कर मर जाता उसके खून से यज्ञ - वेदि को अभिमन्त्रित किया जाता था तथा मरने वाले को पुण्य आत्मा समझा जाता था। यदि बेड़ा रस्सी के पार होकर बच जाता तो उसे अभागा समझा जाता और इसे देवी हिडिम्बा का प्रकोप माना जाता। ऐसी स्थिति में बचने के लिए उसे किसी न किसी तरह गिरा ही दिया जाता था। निर्मण्ड में अन्तिम नर बलि सन् 1925 में दी गयी थी। आज बकरों को काट कर इस परम्परा का निर्वाह किया जाता है। हिमाचल में शिमला के ऊपरी वेगों में भूण्डा यज्ञ परशुराम की स्मृति में भी आयोजित होते हैं।

देवी हिडिम्बा के स्मृति चिह्न लाहुल में जाहलमा गांव में बिलासपुर में सरयून तथा चंचैहली स्थानों पर मन्दिरों के रूप में वर्तमान है। मण्डी व सोलन के अनेक क्षेत्रों में लोग इस देवी की पूजा करते हैं। चम्बा में 'हिरिमा' देवी का प्राचीन मन्दिर वर्तमान है। यह चम्बा नरेशों की राजदेवी रही है।

हिडिम्बा की सांस्कृतिक गाथा से अनुमान लगाया जा सकता है कि हिमाचली क्षेत्र में नाग, खश, पक्ष, किन्नर, कोल और किरात जातियों के अतिरिक्त राक्षस जाति भी वर्तमान थी। इसी के फलस्वरूप यहाँ के लोक विश्वासों में अन्धविश्वास, जादूटोना तथा अति प्राकृत परम्पराओं की छाप पाई जाती है।

बाड़ी मेले की परम्परागत विधि एवं देव वाद्य

बाड़ी मेले से पूर्व महाभारत की लड़ाई की स्मृति मे प्राचीन

साज - बाज के साथ युद्ध की धुनें छः दिन लगातार देव स्थान में विधिवत बजाई जाती है। युद्ध की धुन को 'महाजंग' और बेल बजाना कहा जाता है। देवालय में प्राचीन काल से ढोल नगाड़े, ढाकुली, पाणा, शहनाई, टमक, शंख तथा घंटियों का घोष होता है। महाजन की बेल साज बाज के साथ छः दिन पूर्व मंगला मुखी (मांगता) द्वारा प्रातः चार बजे तीन बार, दिन में बारह बजे और शाम को छः बजे पाण्डवों के सामने वाले मन्दिर में बजाई जाती है सातवें दिन जागरण के दिन सात बार बेल बजाई जाती है। सातवें दिन जागरण के दिन सात बार बेल बजाई जाती है। बुईला गाँव के मन्दिर से रात दस बजे मन्दिर में रखी गई मूर्तियों का अन्दरोली गाँव की बावडी के जल से पाँचों पाण्डवों की अष्टधातु की मूर्तियों को स्नान करवाया जाता है, पुजारी इन मूर्तियों को पाण्डवों की विश्राम - स्थलियों जिन्हें ''पाईना'' (पत्थरों का चबूतरा) कहा जाता है, ले जाता है। श्रद्धालुओं की भीड़ में बेंत लहराता हुआ पुजारी घण्टी बजाते हुए रुक जाता है तथा रात 12 बजे ''मरयारी की धाड़'' (ढांक) पर रुककर निर्मित विश्राम स्थल (चबूतरे) से महाभारत के राक्षस (हिडिम्बा - परिवार) देवताओं का आवाहन करता है तथा जोर - जोर से आवाज लगाता है इस बीच मंगलामुखी 'बेल' को इतना जोर से बजाता है कि इस आवाज की बातें कोई सुन न ले। लोग इस बीच बहुत शोर मचाते हैं।

मंगलामुखी द्वारा आवाहन की आवाज का सुनाई देता और महाजंग (बेल) का बाजा बजाते समय छड़ी का गिरना अशुभ माना जाता है। महाजंग का बाजा बन्द होते ही देवथल मन्दिर से महाजंग का बाजा बजाने के साथ भीड़ मुख्य मन्दिर में रात ढाई बजे पहुँचती है। फिर विधि विधान से मूर्तियों की पूजा की जाती है।

फिर रात 3 बजे के लगभग ''झण्डे की रीड़ी'' पहाड़ी व देवस्थल की चारों दिशाओं में महाजंग का बाजा बजाते हुए बाड़ी मेले का निमन्त्रण दिया जाता है। फिर चार बजे मुख्य मन्दिर में प्रवेश करके एक विशेष प्रकार का रोट व खीर जो एक नाई परिवार द्वारा बनाई जाता है शिवजी के मन्दिर में चढाये जाते हैं। पूजा और चढावे के बाद यह प्रसाद के रूप में श्रद्धालुओं में बांटा जाता है। झण्डे की रीडी देव स्थान से सौ मीटर की दूरी पर एक छोटा

शिखर है यह उस स्थान और घटना का प्रतीक है जहाँ श्रीकृष्ण ने बर्बरीक की बलि के बाद उसका सिर एक पहाड़ी पर ऊंचे बांस पर लटकाया था जहां से वह महाभारत का पूरा युद्ध देख सके। झण्डे की रीड़ी पर बाड़ी मेले के जागरण के लिए ब्रह्ममुहूर्त में महाजंग बेल बजाकर दक्षिण दिशा में कुरूक्षेत्र की तरफ मुँह करके आवाहन किया जाता है। झण्डा लहराने के कारण इस स्थान का नाम परम्परा से झण्डे की रीड़ी पड़ गया है।

मेले के दिन 10 बजे प्रातः युद्धिष्ठिर का रथ सुसज्जित होकर बेल बजने के साथ श्रद्धालुओं के साथ थारगूधार के पाईंते पर पहुँचता है। युद्ध से युद्धिष्ठिर अपने भ्राता भीम को प्रस्थान करने का आदेश देते है। इसी का साथ बुईला से भीम का रथ मूर्तियों से सुसज्जित रथ में सजाया जाता है। श्रद्धालु कणक, सोना, चांदी, छत्र आदि चढ़ाते हैं। 12 बजे 'मरयारी की घाड़' (गिद्धों का ढांक) पर जोर - जोर से बाजा बजाते हुए भीम अपने छोटे भाई सहदेव को जैसे देवथल से चलने को कहते हैं। फिर सहदेव के साथ युद्धिष्ठिर का रथ बाड़ी धार को प्रस्थान करते हैं। लगभग ढाई बजे दोपहर श्रद्धालुओं सहित मां बूढ़ादेई (हिडिम्बा) और पाण्डव रथों की पूजा की जाती हैं।

इस प्रकार शिवस्थली में पांच पाण्डवों के मिलन एवं यात्रा का आयोजन होता हैं। बाड़ादेव के कारिन्दे परम्परा से जाति - विशेष के आधार पर देव अनुष्ठानों में भाग लेते हैं - ये हैं पुजारी, ब्राह्मण, मंगलामुखी, जागरू (देऊवां) राजपूत, नाई, सुनार, जाट, धोबी, लुहार। ये सभी नियमानुसार एवं श्रद्धा से इस वार्षिक उत्सव को आयोजित करते हैं।

बर्बरीकः कृष्ण का अवतार श्याम - खाटू!

बर्बरीक श्याम खाटू के नाम से विख्यात है। हिमाचल के अतिरिक्त हरियाणा, राजस्थान, पंजाब आदि क्षेत्रों में श्याम खाटू के प्राचीन मन्दिर वर्तमान हैं। हरियाणा के झज्जर जिले में बेरी कस्बे में गांव दूबलधन में दुर्वासा की तपस्थली के अतिरिक्त बर्बरीक का देव स्थान भी है। इसके साथ ही पाण्डव राजमाता गांधारी द्वारा निर्मित माँ भीमेश्वरी देवी मन्दिर विख्यात है।

यहाँ के तीर्थ नामक सरोवर से तीन किलोमीटर की दूरी पर गांव

माजरा में पवित्र सरोवर है जिसे देवालय कहा जाता है। इस सरोवर का महाभारत काल से विशेष सम्बन्ध है। इस सरोवर के किनारे भीम सेन के पुत्र तथा घटोत्कच के पुत्र बर्बरीक ने कठोर तप किया था यह स्थान उनकी तपोस्थली के रूप में विख्यात है।

बर्बरीक तपस्थली होने के कारण यहां बाबा श्याम खाटू का विशाल मन्दिर बनवाया गया था। महाभारत काल से यहाँ बाबा श्याम का विशाल मेला लगता है, जिसमें देश के अन्य राज्यों से लाखों श्रद्धालु पूजा-अर्चना करने आते है।

'खाटू' (राजस्थान) के बाद श्याम बाबा का यह सबसे बड़ा धार्मिक स्थल हैं। हरियाणा प्रदेश की जनश्रुतियों के अनुसार जब कृष्ण की आज्ञानुसार पाण्डव बर्बरीक के शीश को हिमालय पर्वत पर ले जा रहे थे तो रास्ते में कमरू नाग (मण्डी) में वे हिमकन्या पर मोहित हो गये। पाण्डवों ने शीश की प्राण-प्रतिष्ठा कमरूनाग पहाड़ी पर की और वापिस कुरूक्षेत्र आ गये। इन्द्रप्रस्थ जाते हुए युद्धिष्ठिर ने माजरा दूबलधन में उसके धड़ की अन्त्योष्ठि की तथा मन्दिर समाधि बनाई।

1540 ई. में संत शिरोमणि बाबा मोहनदास ने यहां बर्बरीक की समाधि बनवाई। प्राचीन विवरणों के अनुसार महाभारत काल में यमुना नदी हिमाचल के पहाड़ों से निकलकर राजस्थान की ओर बहती थी। उस समय बर्बरीक का सिर खाटू गांव पहुँचा, जहां मन्दिर बना। पास में बर्बरीक की दादी और घटोत्कच की माता हिडिम्बा देवी का मन्दिर बना है।

लोग विश्वास के अनुसार प्रतिवर्ष गोविन्द द्वादशी को वीर बर्बरीक की दादी हिडिम्बा अपने पौत्र की समाधि पर जरुर आती है। एकादशी और द्वादशी की मध्य रात्रि को सिद्धेश्वर धाम दूबलधन में बून्दाबांदी होती है। कहते हैं दादी हिडिम्बा अपने पौत्र की समाधिपर आंसू बहाती है। गोविन्द द्वादशी को सिद्धेश्वर धाम माजरा-दूबलधन में विशाल मेला लगता है। इस

अवसर पर देवता को दूध, घी, चूरमा चढ़ाकर पूजा की जाती है।

महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण ने बर्बरीक का सिर रूमावती नदी में डुबा दिया था। बहुत दिनों बाद कलियुग में राजस्थान के खाटू नामक स्थान में नदी किनारे यह सिर अवतरित हुआ। यह सिर जिस स्थान पर मिला, वहाँ गौएं चरा करती थीं। एक गौ जब उनके ऊपर से गुजरी तो उसके थनों से सिर के स्थान पर दूध की धारा स्वत: निकलने लगी। लोगों ने उस स्थान की खुदाई की तो वह बर्बरीक का सिर मिला। उस सिर को एक ब्राह्मण को सौंपा गया। उसने कई दिनों तक उसकी पूजा की। बाद में उस स्थान पर स्थापित कर दिया।

खाटू के राजा रूपसिंह चौहान (राजस्थान) को खाटू श्याम का सपना आया जिसमें उसे कहा गया कि वह देवता का मंदिर बनाये। चौहान ने फागुन मास में शुक्ल पक्ष की 11वीं तिथि को श्याम खाटू मन्दिर का निर्माण करवाया।

एक अन्य राजस्थानी कथा के अनुसार रूपसिंह की पत्नी नर्वदा कंवर को सपना आया कि उक्त स्थान पर श्याम खाटू का सिर दबा हैं उसे निकाला जाये। उस स्थान से जिसे आज ''श्याम कुण्ड'' कहते हैं बर्बरीक का सिर निकालकर मन्दिर में स्थापित किया गया।

श्याम – खाटू मन्दिर

खाटू – श्याम का मूल – मन्दिर रूप सिंह चौहान राजस्थान महाराजा ने 1027 ई. में बनवाया था। – 1720 ई. में दीवान अभयसिंह ने इसका पुननिर्माण करवाया, जो मारवाड़ के राजा के अधीन कर्मचारी थे।

खाटू मन्दिर वास्तुकला का उत्तम नमूना है। चूने – सूरखी, संगमरमर और टाइलों से सुसज्जित मन्दिर दिव्यता प्रदर्शित करता है। पूजा गृह के बाहर जगमोहन है। इसके हाल की लम्बाई 12.3 मीटर व चौड़ाई 4.7 मीटर है। दीवारों धार्मिक चित्रों से सुसज्जित हैं। संगमरमर से बना मन्दिर चांदनी दीवारें में दूर – दूर से दमकती प्रतीत होती है।

बर्बरीक को श्याम - रवाटू नाम उसके शीश दान के कारण स्वयं कृष्ण ने दिया था। कृष्ण से सम्बन्धित सभी पर्व त्यौहार, कृष्ण जन्माष्टमी, झूला - झूलनी एकादशी, होली, बसन्त पंचमी आदि त्यौहार राष्ट्रीय स्तर पर मेले के रूप में आयोजित होते हैं।

बर्बरीक का सबसे महत्वपूर्ण मेला वार्षिक फाल्गुन मेला है जिसमें समस्त भारत के श्रद्धालु दर्शनार्थ यहां आते है। रवाटू के मन्दिर के पास सुन्दर बागीचा है जिसमें श्याम रवाटू के शिष्य अलू सिंह की समाधि है। इससे संयुक्त गोरीनाथ मन्दिर, गौरीशंकर मन्दिर है। गौरी शंकर मन्दिर से सम्बधित एक जन श्रुति है कि एक बार औरंगजेब ने मन्दिर के शिवलिंग को नष्ट करना चाहा जब भाले से लिंग पर वार किया गया तो उसके रवून बहने लगा। सैनिक यह देरव कर भाग गये। उस पर भाले के निशान देरवे जा सकते हैं।

श्याम रवाटू मन्दिर जोधपुर से 80 किलोमिटर की दूरी पर रवाटू गांव में स्थित है। देवता के उत्सव श्याम एकादशी, द्वादशी, श्याम कुण्ड स्थान, निशान यात्रा उत्सव और फाल्गुन मेले यहीं नहीं, समस्त राजस्थान तथा समीप वर्ती प्रदेशों में आयोजित होते है।

श्याम रवाटू के अनेक नाम हैं

1) बर्बरीक
2) शीशदानी
3) हारे का सहारा
4) तीन बाण धारी
5) लरवदातारी
6) लीला का अस्वार
7) नीले घोड़े का स्वार
8) रवाटू - नरेश
9) कलियुग का अवतारी
10) बाड़ा देव
11) महाकाल

(12)

देव मंढोड़-सिरमौरी कुरगण प्रकाश

भारतीय जनमानस वीरों की पूजा करता रहा है। समाज - व्यवस्था की दृष्टि से जब राजा का पद सर्वोच्च माना गया तो उसमें देवत्व की भावना आरोपित की गई। राजा प्रजा की इच्छा शक्ति का ही प्रतीक था। प्राचीन भारत में कुलों, गणराज्यों और राष्ट्र का सूत्रधार राजा ही था। सभ्य सामाजिक व्यवस्था में राजा एक निर्वाचित प्रतिनिधि था जो युद्ध और शांति के समय सामाजिक सुरक्षा और व्यवस्था के लिए

उत्तरदायी था। सभ्यता के प्रारम्भ में वह कुलागत नहीं होता था। उत्तर वैदिक काल के पश्चात् राजा कुलागत बनता गया - ऐसे उल्लेख साहित्य में मिलते हैं। प्रारम्भ में राजा निरंकुश न था। वैदिक काल के पश्चात् राजा जनमत द्वारा निर्वाचित भी होने लगा, किन्तु पश्चात् काल में राजा के कुलागत बनने की परम्परा मिलती है।

राजा का महत्त्व इन पंक्तियों में स्पष्ट होता है - 'स: राजा य: रंजते।' राजा वह है जो प्रजा में रमता है अथवा प्रजा का रञ्जन करता है। मनु ने राजा की महत्ता के विषय में लिखा है कि जब सृष्टि निर्माण के पश्चात् अराजकता फैल गई गई तब संसार की रक्षा के लिए प्रभु ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ देवताओं का अंश लेकर राजा को उत्पन्न किया। राजा का महत् पद ही है जिसके कारण भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध को देवता के रूप में पूजा गया।

हिमाचल में सहस्रबाहु की स्मृति में दानो देव, महाराजा जगदेव की स्मृति में धारा वाला देव तथा बर्बरीक की स्मृति में बाड़ा में बाड़ा देव के उत्सव पितृदेव राजा के रूप में मनाये जाते हैं।

शिमला जनमद में मंढ़ोड़ देव राजा कुरगण प्रकाश की स्मृति में है जो सिरमौर का टीका कहा जाता है। कुरगण प्रकाश को ही देव मंढ़ोड़ कहा जाता है। इस क्षेत्र में इस देव का सिर कटने के कारण इस स्थान का नाम मंढ़ोड़ कहा जाता है। इस क्षेत्र में देव का सिर कटने के कारण इस स्थान का नाम मंढ़ोड़घाट पड़ गया। 'मंढ़ोड़' का शब्दिक अर्थ है 'मुंड' (सिर) कटने का स्थान।

वंशावली

इस देव की वंशावली के अनुसार भट्टी संवत् एक माघ मास में रविवार के दिन सिरमौर का राजा देव प्रकाश हुआ। इस राजा की सात रानियां थीं, जिनके कोई संतान न थी। जब राजा ने अपने मन्त्री धर्म राय के पुत्र भाद्र राय को बुलाया कि तुम योग्य उत्तराधिकारी को ढूंढो। भाद्र राय उज्जैन नगरी के पास यदुकुल के राजा के पास गया। उस राजा का कोणक नाम का मंत्री था। उस राजा से उस भट पुत्र ने उसकी रानी को दान में मांगा, रानी गर्भवती थी। वह रानी चन्द्रवंशी थी जबकि राजा सूर्यवंशी था। राजा ने शास्त्रीय मर्यादा अनुसार सिरमौर नरेश के लिये रानी के साथ घोड़ा, नगाड़ा, बागा (वस्त्र), चौंर और डोला दान में दिये। साथ में रूद्र नाम का गर्ग गोत्रीय ब्राह्मण भी भेजा। रास्ते में गंगा नदी के किनारे पलाश वृक्ष के नीचे गाजिप्रकाश राजा का जन्म हुआ। राजा गाजिप्रकाश एक रवि उत्तरे पौष मास एकादशी तिथि रविवार प्रविष्टे 13 शुभ लग्न घटि मुहूर्त में पैदा हुए।

सारे देश में नौबत बाजे बजने लगे। दरबार में स्वागत में उत्सव मनाये गये। इस राजा का गोत्र अवाण यादव माना गया। राजा गाजिप्राश की 31 वीं पीढ़ी में सिरमौर का राजा वीर प्रकाश हुआ। वीर प्रकाश के दो रानियाँ थी। बड़ी का नाम चन्द्रकला तथा छोटी का नाम हरिप्रबोधिनी था। चन्द्रकला मधुमास में गुरूवार, शुक्लपक्ष में नवरात्र रामनवमी के दिन अष्टभ्य सूर्य उत्तर, कर्क लग्नोदय, पुनर्वसु नक्षत्र, द्वितीयाचरण, मिथुन राशि मध्य, शुभ वेला में

कुरगण प्रकाश पैदा हुआ। दूसरा छोटा प्रद्युम्न प्रकाश तथा उससे छोटा बलदेव प्रकाश हुआ। दूसरी रानी के एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम था – उद्धव प्रकाश।

एक दिन राजा वीर प्रकाश ने एक नटुए से कौशल दिखाने को कहा। नटुआ इस शर्त पर नटखेल दिखाने को तैयार कि राजा उसे मुंहमांगा ईनाम देगा। राजा ने नटुए से कहा कि वह रेणुका ताल में रस्से पर आर – पार हो जाए तो वह उसे राज्य का आधा हिस्सा दे सकता है। राजा नटनी पर आसक्त तो था ही। वह नटुए को किसी बहाने समाप्त करना चाहता था।

नटुए ने यह शर्त स्वीकार कर ली। रेणुका ताल में आर – पार बन्धे रस्से पर वह बड़ी चतुराई से आगे बढ़ने लगा। वह आधे ताल को पार कर चुका था। राजा का दिल धड़कने लगा। राजा ने तुरन्त मन्त्री को रस्सा काटने का संकेत किया। रस्सा कटते ही छपाक से नटुआ पानी में गिरा और डूब कर मर गया।

नटनी विलाप करने लगी। उसने राजा को शाप दिया कि तीन दिन के अन्दर राजा की नगरी डूब जाए ऐसा कहकर नटनी ने उस ताल में छलांग मार कर अपने प्राण दे दिए थे। किवंदंतियों में रस्सी पर चढ़ने वाली नटनी थी, किन्तु वंशावली में नटुआ लिखा है।

तीसरे दिन तुलसा नामक स्त्री सुबह तड़के दूध औघट रही थी कि उसे आकाशवाणी हुई कि बुढ़िया तू इस नगर को छोड़ दे, इस पापी राजा का नगर सुबह होने तक पानी में डूब जाएगा। राजा स्वयं नष्ट हो जाएगा। उस बुढ़िया के कहने से सारे नगरवासी वहां से चले गए। शहर खाली हो गया। राजा के चारों पुत्र सिरमौर से भाग खड़े हुए। उन चारों ने भज्जी क्षेत्र में आकर शरण ली। छोटी रानी का पुत्र उद्धव प्रकाश थोड़े दिनों पश्चात् लौट कर सिरमौर का राजा बना। राजा डूब कर मर गया। नटनी का शाप ज्येष्ठ पुत्र कुरगण को भुगतना पड़ा।

टीका कुरगण प्रकाश श्वेतपुर (भज्जी) के 'हियूण' नामक स्थान में बस गया। दूसरा भाई प्रद्युम्न प्रकाश 'साझ' (भज्जी) बनौण नामक स्थान में तथा तीसरा भाई गलोट (शिमला) में बसे।

ऐतिहासिक कथा गिरि नदी पर नटनी के पार होने की शर्त के सम्बन्ध में है, लगता है सहस्रों वर्षों की श्रुतियों के अनुरूप वंशावलीकार ने स्वाभाविक रूप से पात्र परिवर्तन कर दिया है। फिर भी घटनाओं की ऐतिहासिकता तथा लोक विश्वास को देव की लोकप्रियता के कारण आघात नहीं पहुंचाई है। यह विवरण देव की वंशावली में उपलब्ध है।

देव स्थल : मंढोड़ घाट

मंढोड़ घाट तत्तापानी (सुन्नी) से लगभग दो कोस की दूरी पर स्थित है। देव मंढोड़ का मन्दिर इसी स्थान पर है। इस स्थान का प्राचीन नाम शिम्बल धाला है। इसी अंचल में कुछ दूरी पर देवी मनसा अथवा 'बनसाई देवी' का ऐतिहासिक मन्दिर है। यह देवी स्थानीय निवासियों की कुलजा थी। कुरगण प्रकाश को इसी देवी की शरण लेनी पड़ी थी।

हियूण में जहां कुरगण प्रकाश ने अपना आवास बनाया था, किसी षड़यन्त्र के कारण ब्राह्मणों ने दराट से वार किया और सिर धड़ से अलग कर दिया। देव के सिर कटने के कारण अनेक जन श्रुतियां प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार कुरगण देव हियूण की किसी सुन्दर ब्राह्मणी पर आसक्त हो गये थे। फलस्वरूप नलावण के लोगों ने यज्ञ में आमन्त्रित करके कुरगण का सिर धड़ से अलग कर दिय था।

एक अन्य लोक विश्वास के अनुसार देव कुरगण दिव्य राजकुमार थे। इनके महल नलावण में थे। ये सिद्ध पुरुष थे। आधि - व्याधियों के उपचार ये स्पर्श मात्र से या सरसों के दाने मन्त्रने से कर दिया करते थे। मुर्दे को जिन्दा कर देते थे। ऐसे चमत्कारों से नलावण हियूण अभिजात्य वर्ग के ब्राह्मणों तथा श्वेतपुर नरेश ने इन्हें ईर्ष्या से, धोखे से यज्ञ में बुलवा कर मरवा डाला। देव के चेले देव पूजा के समय स्तुति इसी तरह प्रारम्भ करते हैं।

'तो किता तिने नलाऊणिए
तिने जगो रे निऊंदे बुलाया
गढ़' सिरमौरो रा टीका

चढ़ि पहाड़े नो आया टांगरूए फाट लाया!
सिर रहेया तेरी हियूणे बसाले मशे रे ताने आया
किल्टूए चकी ल्याया। टांगरूए फाट लाया।'

'इन नलावण के लोगों ने अनर्थ कर दिया। यज्ञ के बहाने आमंत्रित किया। सिरमौर का टीका पहाड़ में आया किन्तु लोगों ने टांगरूए फाट लाया अर्थात काट डाला। कुमार का सिर हियूण में तथा धड़ मंढोड़ में रह गया फिर भड़ चनाल ने सिर तथा धड़ को किलटे में उठा कर देवी मनसा की शरण में लाया।'

कुरगण देव के साथ उसका सेवक घोड़ेवान भड़ चनाल था। उस ने किलटे में उसका सिर और धड़ इस विचार से उठाया कि इसे पास बहते सतलुज नदी में बहाएगा। जब वह हियूण से वश्यालड़ी पहुंचा तो वहां वह एक कक्कड़ के पेड़ के नीचे आराम के लिए बैठा। भड़ अभी सुस्ताया भी नहीं था कि एक भयानक आवाज के साथ कुरगण का सिर उड़ कर कक्कड़ वृक्ष से जा लगा तथा डरावनी आवाज करने लगा। भड़ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। हे छत्रपति, हे नरपति, हे स्वामी, मैं आपकी क्या सेवा करूं? कटे धड़ ने उत्तर दिय - मेरे एक मात्र सेवक, मुझे अन्तिम बार सतलुज का पानी पिलाओ।

भड़ ने विनती की कि कुछ दूरी पर ही सतलुज है। वहीं वह पानी पिलाएगा तथा अन्त्येष्टि करेगा। सिर वहीं अन्तर्धान हो गया। भड़ ने किलटा उठाया तथा सतलुज की ओर चला। अभी ''मशे'' की धार पर पहुँचा ही था कि कटे धड़ ने फिर पानी मांगा। भड़ ने किल्टा रख कर प्रार्थना की कि सतलुज केवल तीन कोस है। यहां कहीं जल नहीं है। कटा धड़ कहता है कि अपनी गुर्ज (लौह छाड़) यहीं जमीन पर मारो। ज्यों-ज्यों सेवक धरती पर गुर्ज मारता था, एक अद्‌भुत चमत्कार होता जाता था। देव के गायक इस गाथा को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं।

पहली चोट घण गुरजा री बाई माटिया री फाल कड़ाई
दूजी चोट भड़े गुरजा री बाई मैले री फाल कड़ाई
तीजो चोट भड़े गुरजा री बाई गौंचों री फाल कड़ाई

चौथी चोट भड़े गुरजा री बाई दूधो री फाल कड़ाई
पांजी चोट भड़े गुरजा री बाई नीरो री फाल कड़ाई
ध्याय लगी भई भूरेया चनाला, सतलुजा रा नीर पियाई।

गुर्ज की पहली चोट से मिट्टी, दूसरी से खून, तीसरी से गोमूत्र, चौथी से दूध तथा पांचवी से स्वच्छ नीर निकला। भूरे चनाल (भड़) ने सतलुज का पानी पिलाकर देव की प्यास बुझाई। मशे की धार का यह जल सतलुज का जल ही माना जाता है। शरद में जब सतलुज का जल मटमैला हो जाता है तब इस सरोवर का जल भी मटमैले रंग का हो जाना हैं। पूरे वर्ष सतलुज का प्रतिबिम्ब इसमें झलकता है। सतलुज के जल के साथ - साथ इसका जल भी घटना - बढ़ता है। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि जब भी सूखे के दिनों में इस स्थान पर रतजगा (कीर्तन) होता है। तो अवश्य है कि जब भी सूखे के दिनों में इस स्थान पर रतजगा (कीर्तन) होता है। तो अवश्य ही वर्षा होती है।

जनश्रुति आगे कहती है कि जब धार पर पानी निकल आया तो कटे धड़ ने ढाई अंगुलियां पानी पीया। कटा धड़ भड़ से फिर कहता है - मेरे सेवक, 'मुझे मनसा देवी की शरण में ले चलो'। भड़ किलटे को वहीं छोड़ देवी के सम्मुख उपस्थित होने चला। वह ज्योंहि देवी के चौरे में प्रविष्ट हुआ तभी मनसा के शक्तिशाली ने उसे पकड़ लिया। वह उसे मारने ही वाला था कि देवी ने रोक लिया।

भड़ ने देवी से अनुरोध किया - 'हे भगवनी मनसा, सिरमौर का टीका कुरगण जो हियूण का स्वामी है, आपद्काल में आपकी शरण चाहता है।'

महारानी बनसाई (मनसा) ने कुरगण सम्बन्धी लोकोपवाद के कारण अपने साथ स्थान देना उचित नहीं समझा। उसने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। सेवक भड़ पुन: 'मशे की धार' पर पहुँचा तथा देव को उत्तर सुनाया। कुरगण ने पुन: भड़ को देवी मनसा के पास भेजा और कहा कि देवी को कहो कि मैं उसे धर्म - बहिन बनाता हूँ। उसने पुन: जाकर देवी से कुरगण का अनुरोध सुनाया। देवी ने उससे कहा कि पास ही शिम्बलधाला स्थान हैं। वहां आवास की सभी समग्रियां हैं। वहीं निवास करो। वह कुरगण को उठा कर

शिम्बलधाले ले गया। भड़ ने किलटा रखा ही था कि धड़ तथा किलटा लोप हो गये। इसी पवित्र स्थान में देव मंढ़ोड़ की स्थापना हो गई। ऐसा लगता है कि इस स्थान पर कुरगण प्रकाश की मृत्यु हुई थी।

देव के प्रथम दर्शन

शिम्बलधार पर एक पत्थर की लिंग स्वयं उत्पन्न हो गई। इस स्थान पर गांव की गौएं चरने आती थीं। इस लिंग के ऊपर आकर उनके स्तनों से स्वयं ही दूध निकल आता था। वे घरों में दूध नहीं देती थी। जब ग्रामवासियों को इसका रहस्य मालूम हुआ तो एक ग्रामीण ने कुदाली लेकर इस लिंग को निकालना चाहा चोट पड़ते ही पत्थर से खून लिकलने लगा। सरवालवंश के एक राजपूत ने अपनी पगड़ी फाड़कर लिंग में बांध दी। तब से इसी जाति के लोग देव के कारोबारी होते हैं।

देवी मनसा

देवी मनसा 'बनसाई' भी कहा जाता है जिसका साधारण अर्थ है बन की देवी। यह मंढोड़घाट के लोगों की कुलजा थी। कुरगण की तरह यह इस क्षेत्र की महारानी थी जो संभवत: सती-साध्वी तथा प्रजाप्रिय थी। यही कारण था कि कुरगण को षड्यन्त्र के पश्चात् इसकी शरण में जाना पड़ा था। लोकविश्वास के अनुसार यह देवी किले कांगड़े से लाई थी। इस परिकल्पना से इस देवी की ऐतिहासिकता का पता चलता है। 'कांगड़े का किला' मध्यकाल में पहाड़ी आंचल में सुविख्यात था। कराड़ा घाट देवरे में इस देवी का 1-1/2 फुट ऊंचा कांस्य का आकर्षक मोहरा है। मोहरे में छाती से ऊपर का भाग ही है। इस पर संवत् 1982 अंकित है। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह मोहरा इस संवत् में बनवाया गया था। देवी ने हार पहन रखा है व मुखमुद्रा सौम्य है। इस देवी की तुलना पौराणिक देवियों से करना संगत नहीं लगता। यह प्रारम्भिक लोक देवी है।

देव कुरगण

कुरगण के मोहरे में कुरगण अंकित है। यह कांस्य का मोहर 1-1/2

फुट के लगभग ऊंचा है। सिर पर राजाओं जैसा मुकुट, बड़ी मुंछें तथा सौम्य आकृति है। धड़ के ऊपर भाग विचित्र। धड़ की आकृति झिलमिल सी, टूटी हुई लकीरों से संकेतित की गई है। मोहरे पर टांकरी भाषा में लिखा है 'चीमने बामणे बणुए पराए, सरने लोहारे बणाए। अर्थात चीमनू ब्राह्मण ने मोहरे बनवाये। बनाने वाला सरन लोहार था। इस मोहरे में संवत् 1982 अंकित है।

दानो देव

देव कुरगण के महल नलावण में थे तथा दानो बहुत प्राचीन काल में सुन्नी का राजा था। दानो अथवा सहस्रबाहु की मान्यता सारे हिमाचल में प्रायः एक समान है। पुराणों में परशुराम – सहस्रबाहु का संविख्यात प्रसंत वर्णित है। भगवान दत्तात्रेय जो भगवान शिव के अंशावतार थे – ने सहस्रबाहु को सहस्र भुजाएं दान में दी थी। भगवान् परशुराम ने सहस्रबाहु को युद्ध में मारा था तथा इक्कीस बार अत्याचारी क्षत्रियों को धरती से शून्य किया था। सहस्रबाहु की लोकप्रियता के कारण लोगों ने मंढोड़ देव के रथ में दोनों का मोहरा भी रख लिया। दानो देव की पूजा मंढोड़ देव के साथ परम्परागत रुप से होती है। कुनिहार राजा का यह इष्ट देव है जिसका ऐतिहासिक मन्दिर कुनिहार ताल पर निर्मित है।

बेणुका देवी

यह मोहरा 10 इंच के लगभग दानो देव की पत्नी वेणुका का है। आकृति के निचले भाग में दो लहराते सांप हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य मोहरा भी इसी प्रकार का देवरे में संग्रहीत है।

देवी के इस मन्दिर के साथ एक अन्य मोहरा दानों का ही है। एक अन्य देवी मनसा की चांदी की मूर्ति (मोहरा) जिसकी लम्बाई 9 इंच के लगभग है, देवरे में सुरक्षित है। मूर्ति के कान में सामन्त द्वारा दान में दी गई थी।

भड़ अथवा भौड़

भड़ चनाल जो कुरगण प्रकाश का सेवक तथा अश्वपाल था देव के

मोहरे के साथ संयुक्त है। इसी ने देव को मंढ़ोड़ तक किलटे में लाया था। इसे स्थानीय भाषा में बौड़ भी कहते हैं। इसका कांस्य मोहरा 7 इंच के लगभग है। सिर की आकृति के निचले भाग में लहराता हुआ सांप है। यह मोहरा देव यात्राओं में रथ में नहीं लगता। भड़ चनाल की स्वामी भक्ति थी कि छोटी जाति का होने के कारण भी देव के साथ सम्मान मिला। अधिकांश देव के कार्यकर्ता दलित जाति के थे इसलिए परम्परा से देव के साथ हैं।

दरवाणी

दरवाणी का अर्थ है - द्वारपाल। यह बनसाई देवी का अंगरक्षक तथा द्वारपाल था यह इतना शक्तिशाली था कि देवी के चौरे में पहुंचते ही भड़ चनाल को इसने पकड़ कर घुट दिया था, यदि मनसा देवी दया न करती। मंढ़ोड़ देव के इस दरवाणी को इस जनपद में अन्य देवों के दरवानों से अधिक शक्तिशाली माना जाता है। दरवाणी को मश्वाड़ी लौंकड़ा, दुरानी, भड़ तथा दरवान आदि कई नामों से पुकारा जाता है। राज - व्यवस्था के अनुसार दरवाणी एक विश्वस्त तथा पराक्रमी अंगरक्षक राजा के साथ रहता था।

दरवाणी की शक्ति के विषय में विभिन्न जनश्रुतियां इन जनपदों में प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार यह रथ - छत्र सहित देव - यात्रा में इस क्षेत्र में कहीं घूम रहे थे कि किसी ने कह दिया कि यदि उसका इष्ट मंढोड़ इतना शक्तिशाली है तो इसी क्षेत्र के बाडू बाड़े के चौरे में गया। वहां उसने अपनी लोहे की गुर्ज दे मारी। पलक झपकते ही देव का चौरा घूमने लगा। तब बाडूबाड़ा (सुकेत) के दरवाणी ने क्षमा मांगी। उसका आतिथ्य - सत्कार किया। कहते हैं। तब से ही बाडूबाड़ा का चौंरा टेढ़ा हो गया।

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार एक बार बिलासपुर के राजा ने भज्जी क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। वह सिंह का भक्त था उसने मंढोड़ देव का अपमान किया। मंढ़ोड़ देव का दरवाणी अकेला गुर्ज लेकर निकला। कुछ ही क्षणों में उसने सब सैनिकों को घायल कर उनकी तलवारें छीन लीं तथा सैनिकों को घायल करके बांध दिया। बिलासपुर नरेश इस चमत्कार से हतप्रभ हो गये। मंढोड़ देव की दैवी शक्ति से ही तो दरवाणी में ऐसी अलौकिक शक्ति

आ गई थी। बिलासपुर राजा के हार मानने पर तथा दरवाणी और मंढ़ोड़ देव को अपनी राजधानी में स्थापित करने की शर्त पर दरवाणी ने उन्हें नष्ट करने से छोड़ दिया।

कहते हैं बिलासपुर नरेश ने अपनी राजधानी सांडू के मैदान में मंढोड़ देव की स्थापना की थी। आज भी झील का पानी कम होने पर 'सांडू' मैदान में मन्दिर के अवशेष उभर आते हैं।

पारम्परिक उत्सव

देव मंढ़ोड़ के उत्सव चैत्र मास की संक्रान्ति से प्रारम्भ होते हैं। इन्हें देव-यात्रा कहा जाता है। जनसाधारण अपनी मनौतियों के लिए देव के रथ-छत्र के साथ अपने घर पर देवता को नचाते हैं। अन्य देवों की भांति देवता के गुर (चेले) जिन्हें भणेते भी कहा जाता है, 'पूछ' (प्रश्न) आदि देते हैं। श्रद्धालु जन चेले के उत्तरों से संतुष्ट होकर देव को बकरा, नारियल, अन्न, रूपया आदि चढ़ाते हैं।

देवता के मेले

मंढ़ोड़ देव का मुख्य मेला हरियाली संक्रान्ति सावन को मंढ़ोड़घाट दानोघाट (अर्की) के रथ-छत्र के साथ ज्येष्ठ की पन्द्रहवी तिथि को भी मेले में लाया जाता है। तत्तापानी में दशहरे के अवसर पर मंढ़ोड़ देव रथ छत्र के साथ नृत्य करता हैं। बहुत पहले कराड़ाघाट में सुखण नामक स्थान में इस देव का विशेष उत्सव होता था, जिसे राजकीय स्तर पर मनाया जाता था। कहा जाता है कि सुखण के ऊंच टिब्बे से सिरमौर साफ दिखाई दे जाता है।

मढ़ोड़ देव के वाद्य तथा साजबाज में देवरे में चंवर सांकल, गर्ज, चिमटा, चांदी की कई छड़ियां, रण सिंघा, जंगी ढोल, नगाड़ा, करनाल, ढोलक, नेजे और झण्डे रखे जाते हैं।

सावन सक्रांति एवं दुर्गा अष्टमी को मनसा देवी परिसर में मेले आयोजित होते हैं। देव रथ को मंढोड़ से सुन्नी-तत्तापानी ले जाया जाता है।

इसके अतिरिक्त हर वर्ष देवता की यात्रा शकरोड़ी, घरयाणा, डवारसू, जणोग, जूणी, सुन्नी आदि में ले जाई जाती है। तीन वर्ष बाद देवयात्रा कंडौल, शरोग, धलाया, जतरूबड़, मांदरी और नडूखर जाती है। देवता का मंदिर पहले छोटे चौक पर ही था, आज शिखर शैली के सुंदर मंदिर का निर्माण किया गया है।

पालकी में कुरगण के मौहरे, मनसा माता तथा बटूक भैरव होते हैं। रथ के दायीं ओर भड़ तथा दुर्गा का मौहरा होता है। रथ के पिछली ओर दरवाणी, काली, नारसिंह और सहस्रबाहु के मौहरे रखे जाते हैं। समय के साथ देव कार्यों में परिवर्तन होते रहते हैं।

देव मंढोड़ के देवरे भज्जी, बाघल धामी तथा सुकेत के अनेक गांवों मे आज भी विद्यमान हैं। ग्रामीण समुदाय फसल प्राप्ति पर छमाही में आवश्यक रूप से देव मंढोड़ को रोट – प्रसाद अर्पित करता है जो इस पितृदेव राजा के प्रति अटूट प्रेम तथा श्रद्धा की अभिव्यक्ति का प्रतीक है।

देवता की चमत्कार – कथा

किसी समय राजा कहलूर भज्जी रियासत के राजा से 1000रु कर के रूम में बसूल करता था। यह कर बसूली हर छठे महीने की जाती थी एक दिन जब कहलूर के सिपाही भज्जी में महलों के पास बागीचे में पहुंचे तो उन्होंने एक आदमी को आड़ू आदि फल तोड़ते देखा। सिपाहियों खाने के लिए उस आदमी से फल मांगे। उस आदमी ने फल देने से इन्कार किया और कहा कि पहले वह अपने देवता को फल चढ़ाएगा। तभी वह अन्य लोगों को फल दे सकता है। इस पर सिपाही नहीं माने और एक सिपाही ने तलवार निकाल ली। उस व्यक्ति को भी क्रोध आ गया। जैसे ही सिपाही ने हाथ में तलवार निकाली तो उस व्यक्ति ने झपट कर वह तलवार छीन ली। उसे बीच से पकड़ कर तोड़ डाला और देखते – देखते तलवार मुंह में घुट दी। इस चमत्मार को देखकर सिपाही दंग रह गये।

वह व्यक्ति देवता मंढोड़ का पुजारी 'हंगरीता' था जिसे स्थानीय भाषा में देऊंआ कहा जाता है। उसका नाम धुंकलू था। जब सिपाहियों ने धूंकलू से इस चमत्कार के बारे में पूछा तो उसने कहा कि मैंने कुछ नहीं

किया। यह देव मंढोड़ का चमत्कार था।

कहते हैं देवता का 'देऊंआ' सतलज में छलांग मार कर नदी के आर - पार कर लेता था। तथा नदी के तल से फेंके सिक्के तक निकाल लेता था। कहते हैं कहलूर के सिपाहियों ने जब अपने राजा से धूंकलू के इस चमत्कार की बात बताई तो राजा ने धूंकलू ने राजा के सामने भी इसी प्रकार का चमत्कार किया। इस पर राजा ने उससे मनचाही इच्छा पूर्ण करने की बात कहीं।

इस पर देवता के आदमी ने अपनी पूरी रियासत का कर मुक्त करवा दिया। राजा ने अपने महल के 'दरागे' (नगाड़े) ईनाम के तौर पर देवता को उसी समय दिये तथा रियासत में देवता की स्थापना की।

उसी समय कराड़ाघाट तथा आसपास के लोगों ने देव की शक्तियों से प्रभावित होकर अपने - अपने इलाकों में देवता के मन्दिर बनाये। देवता में आस्था तथा मन्नत पूरी होने के कारण लोग देवता की कथाओं पर पूरा विश्वास करते हैं।

कुरगण के सिरमौर छोड़ने का ऐतिहासिक आधार

जब गिरि नदी में बाढ़ (लगभग 1195 ई.) से सिरमौरी ताल नष्ट हो गया, उन दिनों जैसलमेर राजस्थान का राजा शालिवाहन द्वितीय हरिद्वार में तीर्थयात्र में आया हुआ था। वहां उनकी भेंट सिरमौर के राजपुरोहित भाट होशंगराय से हुई। होशंगराय ने शालिवाहन को राजवंश के नष्ट होने के विषय में बताया और यह भय प्रकट किया कि राज्य में अव्यवस्था न फैल जाए और दिल्ली के मुसलमान सुल्तान सिरमौर की गद्दी न हथिया लें। इसलिए भाट ने शालिवाहन को सिरमौर पर राज करने के लिए आमंत्रित किया। शालिवाहन ने अपने पुत्र रावल राजकुमार हांसू को सेना लेकर सिरमौर भेजा। उसके अव्यवस्था समाप्त की और सिरमौर पर शुभंश प्रकाश नाम से राज्य करने लगा। शुभंश का अर्थ ही शुभ अंश अर्थात महान राजा के अंश से उत्पन्न पुत्र। इसने नये राज्य की स्थापना की। शुभंश प्रकाश ने 1195 से 1199 तक चार वर्ष ही राज किया। लगता है शुभंश प्रकाश भी सिरमौरी

राजवंश से ही सम्बन्ध रखता था।

इस प्रसंग से पता चलता है कि पिछले यदुवंशी राजकुमारों को इस नए शक्तिशाली राजकुमार से लड़ने की क्षमता नहीं रही होगी। अतः वे सिरमौर से सुन्नी क्षेत्र तथा आसपास के क्षेत्रों में अपनी छोटी - छोटी सेनाओं के साथ संघर्ष करते हुए यहां बसे होंगे। उनके साथ प्रजा के बहुत लोग साथ आए होंगे। इनमें कुरगण सबसे चतुर और शक्तिशाली था जिसने नलावण और सुन्नी के सामन्त शासकों से लड़ाइयां कीं और विजय प्राप्त कर यहां बस गया। यहां की रानी मनसा ने प्रारम्भ में उसे शरण दी थी ।

जनश्रुतियों के कारण सत्यता पर आवरण चढ़ गया है। अतः विभिन्न प्रसंग सुनने को मिलते हैं।

ऐसा लगता है कि रानी मनसा यहां अकेली शासन करती थी जिसे कुरगण के आने से अपार शक्ति प्राप्त हुई तथा समीपवर्ती रजवाड़ों का भय नहीं रहा । सफल शासन करने के उपरान्त मृत्यूपरान्त इन्हें 'देवत्व ' प्राप्त हुआ।

(13)

हरसंग देव : ऋषि दामोदर

हरसंग धार अर्की क्षेत्र की कठपोल - कांगरी धार के पूर्वी भाग की अन्तिम गिरि श्रृंखला है। यह चण्डी पंचायत क्षेत्र के रूडाल गांव से लगभग 12 कि. मी. दूर है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से लगभग 6500 फुट है। यह

सतलुज दरिया से लगभग 6 कि.मी. दूर ऊंचाई पर स्थित है। शीतकाल में इस पर बर्फ पड़ती है। इसकी धारों पर बान और चीड़ का सुन्दर जंगल है। इसे अन्य बर्फीली धारों की तरह 'शिव' की धार माने जाने के कारण 'हरिश्रृंग' अथवा 'हरसंग' धार कहा जाता है।

हरसंग धार पर मन्दिर के अन्दर एक बड़ी पवित्र शिला है। इस शिला के नीचे महाराज इन्द्र की परियों का अखाड़ा है - ऐसा लोक विश्वास है। प्रतिवर्ष चैत्र मास की 15 वीं तिथि को इसका मेला लगता है। तभी देवता की सवारी सजाई जाती है और इसे नचाया जाता है। कहते हैं किसी वर्ष इसके मन्दिर का दरवाजा नहीं खुलवाया गया था। उस दिन एक बाघ ने स्वयं आकर मन्दिर का दरवाजा अपने मुंह से काटकर खोल दिया था। बाघ के दान्तो के

निशान दरवाजे पर अंकित हैं।

इस निर्जन धार पर यह देव कैसे आया, इसके संबंध में देवता की वाणी (देवगीत) में इस प्रकार कहा गया हैं।

'वार भी सरसा, पार भी सरसा, बीचे गंगा रवाई
अंगे – संगे, हीरा चञ्ज्याला मूअरे भीमा माई
नीला देश्शा ते आया
सरसा पटड़िया ते कित्या पयाणा
चल वे देवा पहाड़े नो जाणा
सरसा पटड़िया ते चल्या बड़ोगो रे घाटे आसण लाया।
पर्वत – पर्वत ढूंढे ओर नी नजरी आया
हरसंग आई की आसण लाया
हरसंग पर्वत को ध्यान लगाया
नीचे बगी सतलुज नदी
हरसंग पर डेरा लगाया।'

यह देव कहीं सरसा पटड़ी (संभवत: राजस्थान अथवा सरसा पट्टण) से यहां हिमालय की यात्रा पर आया। 'सरसा पटड़ी को नील देशा भी कहा जाता हैं। इसके साथ अन्य देवता जो स्थानीय देव बाड़ू – बाड़ा से संयुक्त हैं – भी आये हैं। ये देवता हैं – चंज्याला देव (अजय पाल) और हीरा मेहता (यह वीरसेन सुकेत के समकालीन है) देव। इस वाणी से हरसंग (13 वी शतीं) देव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का पता चलता है। लोग संभवत: इन अन्य सहयोगी देवताओं के कारण इसे भी पाण्डववंश का मानते हैं, परन्तु यह एक ब्राह्मण ऋषि था जो हिमाचल में एकान्तवास करने आया था।

देवता ने सबसे पहले बड़ोग नामक गांव में विश्राम किया था। इसलिए इस स्थान पर इसका देवस्थल निर्मित किया गया। उसके बाद वह इस सुन्दर श्रृंग पर पहुंचा था। इसकी पहाड़ी से लाहुल – स्पीति, सुकेत, सिरमौर की ऊंची श्रृंखलाएं दृष्टिगोचर होती हैं।

हरसंग देव की तीन पूजाएं हैं जो विभिन्न गांवों के देवरों में स्थापित हैं। ये गांव हैं- बड़ोग, कशलोग तथा सुन्नी क्षेत्र में चनावग। इसके रथों में अष्टधातु तांबे तथा कांस्य के मोहरे हैं। लोग खुशी तथा संकट के समय देवता की मनौतियां करते हैं। छमाही पर फसल आदि भी देवता को भेंट करते हैं।

गोरखों के आक्रमण (1805 ई.) के समय इस धार पर हरिसिंग नामक गोरखा सेनापति के साथ कुछ अन्य सिपाही भी कुछ बरसों तक रहे थे, किन्तु बाद में अंग्रेजी सैनिकों ने इन्हें पकड़कर मार दिया था।

यह देवस्थल उतना ही प्राचीन है जितना कि बाड़ूबाड़ा देव-बटवाड़ा का। वैसे यह भी माना जाता है कि इस देव के यहां आने पर ही यहां बाहर से लोग आकर बसे थे। लोगों का यह भी विश्वास है कि कराड़ाघाट के लोग इसके साथ आये थे। वे देव के सम्बन्ध में अधिक जानते हैं- एक स्थानीय उक्ति हैं।

'वार भी सरसा, पार भी सरसा, बीचे दामोदर देओ
और नी जाणे कोई इसको, कराड़ू जाणे इसका भेयो।'

हरसंग देव के रथ प्रतिवर्ष श्रावण संक्रान्ति को हरसंग धार पर लाये जाते हैं। यदि इसमें भूल हो तो बड़ा अनिष्ट हो सकता है-ऐसा विश्वास है। कुछ वर्ष पहले चनावग वाले रथ, धार पर नहीं लगाये तो गांव में बिजली पड़ी थी जिससे अन्न धन तथा पशु हानि हुयी थी।

दामोदर ऋषि एकान्त साधना तथा जन-प्रेम के कारण इस क्षेत्र का देवता बन गया, जिस का नाम ही धार से जुड़ गया।

हरसंग देव की 'वाणी'

'हो पगड़ा देवा हो पगड़ा
हाथ जोड़ी-जोड़ी अरजां करदे आसे कल्याणे तेरे
कणका रे दाणे एयो सत्वांजे तेरे

बहने – विष्णुए मांगे।
केसा देशा ते तू आया देवा
केसा देशा ते किया पयाणा
जे चल पहाड़े जाणा।
नीला देश से आया, सरसा पट्टी ते किया पयाणा
चल पहाड़े जाणा।

वार सरसा पार सरसा, बीचे गंगा खाई
अंगे संगे हीरा – चंज्याला चलेया
मूअरे भीमा भाई।
सरसा पट्ड़ी ते चलेया,
बडोगा रे घाटे आसण लगाया
परवत – परवत टोले
पर कोई नी मेरी नजरी आया!

हरसंग पर्वत को ध्यान लगाया
नीचे बगी सतलुज गंगा
हरसंग पर्वत पर बासा तेरा

ग्वालुए बडोगुए घूम मचाया
गौंचे न्हाया, फेर गौवे दूध पल्याया!

हरसंग देव की वैशाखी पर्व देव – जात्रा

हरिश्रृंग धार पर प्रतिवर्ष वैशाख – संक्रान्ति को हरसंग देव की रथ – चक्र सजाकर 'जात्रा' मनाई जाती है। एक पारम्परिक रिवाज के अनुसार बन्दूकों से एक शिम्बल (सेमल) के पेड़ पर निशाना लगाया जाता है। इस आयोजन में शिम्बल पेड़ की मोटी – मोटी रोटियां (रोट) रखी जाती हैं। फिर बारी – बारी से ढोल नगाड़ों के ताल पर शिबंल – पर निशाना लगाया जाता

है। जो व्यक्ति निर्धारित निशान पर ठीक निशाना लगाता है उसे भाग्यवान माना जाता है।

यात्रा के उपरान्त देवता का 'देऊंआ' ढोल – नगाड़ो के घोष के बीच लोगों की 'पूछ' (प्रश्नों) का उत्तर देता है। तथा आशीर्वाद के रूप में 'सत्वांज' (कणक के दाने) देता है। लोगों मनौतियां पूर्ण करते हैं। तथा मन्ननों के अनुसार देवता को अन्न – धन – खाडू – बकरे चरते हैं।

इस आयोजन में देवना की अन्य पूजाओं में भी इसी प्रकार आयोजन होने हैं। आज यह परम्पराएं धीरे – धीरे क्षीण होती जा रही हैं।

14

वृजेश्वर देव : बीजू देव

गजेटियर ऑफ द शिमला हिल्ल-स्टेट्स-1910 के अनुसार बीजू (वृजेश्वर) देव मूल रूप से बीजट देवता का सहायक देवता था, परन्तु चूं कि वह क्योंथल राज्य में था, अतः वह (बीजू) जुंगा देव का सहायक (अधीनस्थ) देवता बना। बीजू देव का वास्तविक नाम वृजेश्वर महादेव अथवा महादेव है जो प्रकाश विद्युत- का देवता है। इस देवता का प्राचीन मन्दिर '' चूड़ चांदनी '' के नीचे जुब्बल क्षेत्र में हैं।
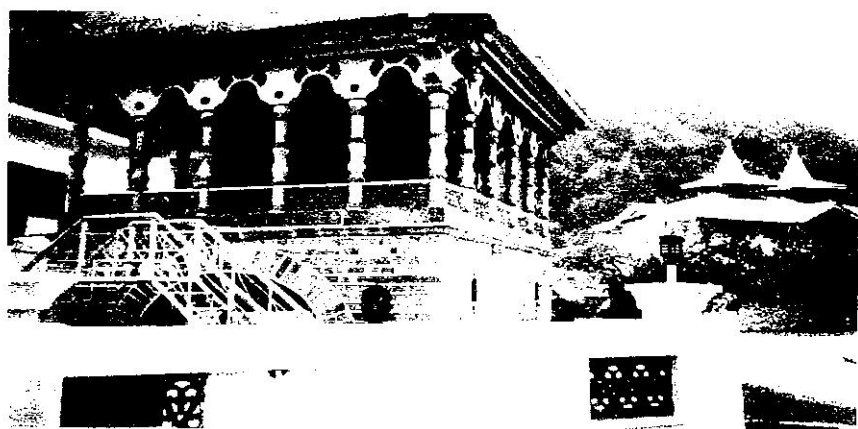
ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार श्रीगुल देव जिसका मूल स्थान चूड़-चांदनी पर्वत पर है- इनका धार्मिक वृतान्त जुब्बल क्षेत्र के दक्षिणी भाग में पूर्व-प्रसिद्ध था। वहां श्रीगुल को ही बीजट देव के नाम से पुकारा जाता है अथवा बीजू देव कहा जाता है और यह समस्त शिमला हिल्स में इसी नाम से पूजा जाता है।

लगता है इन क्षेत्रों में इन राज-पितर देवताओं के साथ रहने अथवा मन्दिर होने के कारण इन्हें एक ही नाम से पुकारा गया। वैसे बीजू देव प्रख्यात मन्दिर देवथल- (सोलन-गंभर पुल) और जुब्बल चौपाल क्षेत्र में हैं।

बीजट देव बिजली आंधी का देवता है और इनकी याद में वैशाख मास में बीशू मेला समस्त क्षेत्रों में श्रद्धा - विश्वास से मनाया जाता है।

इस देव से संयुक्त एक शक्तिशाली देवी 'विजया' के प्राचीन मोहरे मिलने हैं। यह देवी कोट खाई और कुछ सिरमौर के क्षेत्रों में कुलजा के रूप में पूजी जाती है।

वास्तव में इन क्षेत्रों में श्रीगुल, बीजट, बीजू देव एक साथ पूजित हैं अत: जनसाधारण श्रद्धा - विश्वास के अनुसार किसी एक नाम से स्वेच्छा से स्मरण - पूजन करते हैं। सोलन क्षेत्र में बीजू देव की मान्यता अधिक है और यह माना जाता है कि यह देवता पहाड़ों से यहां साधुवेश में यहां आया है और देवी चमत्कारों के कारण देवथल में आवास करता रहा और देवता के रूप में पूजा जाने लगा।

बीजू देव – देवथल गंभरपुल

बीजू देवता अर्थात बिजेश्वर देवता, प्राचीन कुठाड़ रियासत और समीपवर्ती ठकुराइयों बेजा, महलोग, क्योंथल आदि का प्रमुख देवता है। जुब्बल राज्य के प्राचीन दस्तावेजों में देवता के उत्सवों का वर्णन मिलता है। जुब्बल स्टेट गजेटियर - 1910 में देवता की संक्षिप्त कथा उपलब्ध होती है।

कोट - गुरू राज्य में एक राजा राज्य करता था जिसका नाम था अजयपाल! अजयपाल को कोई पुत्र नहीं हुआ। विद्वानों एवं ज्योतिषियों के कहने पर राजा ने यज्ञ एवं पूजा - पाठ करवायां बुढापे में उसकी रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया विजयपाल। बचपन से ही राजकुमार तीव्र - बुद्धि एवं दैवी चमत्कारों से पूर्ण था। बचपन से धार्मिक - वृति का होने के कारण उसने राज - पाट का मोह त्याग कर साधु - संतों एवं पहाड़ों में घूम कर ज्ञान प्राप्त करने की ठानी। वह विभिन्न विद्वानों का शरण में रहा। राजा जब अधिक वृद्ध हुआ तो लोगों ने विजयपाल को राजा बना दिया।

इस बीच उसकी रियासत पर समीपवर्ती राज्य सिरमौर के राजा श्रीगुल ने आक्रमण कर दिया। विजय पाल को श्रीगुल से युद्ध करना पड़ा। युद्ध में सारी जनता ने उसका साथ दिया। अन्त में उसने श्रीगुल को लड़ाई में हरा

दियां श्रीगुल को मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

विजयपाल को हिंसा से घृणा होने के कारण उसने राजपाट छोड़ दिया और साधु बनकर पहाड़ों में घूमने लगा। उसके चमत्कारों से लोग उसकी पूजा करने लगे।

अन्त में वह गंभर पुल के पास देवथल नामक स्थान पर पहुंचा। यह स्थान दो – तीन लघु सरिताओं का संगम था। वह वहां रूका। कुछ समय बाद वहां उसके समाधिस्थ होने के कारण एक भव्य मन्दिर का निर्माण किया गया। यहां एक भव्य मन्दिर, धर्मशाला, शिवमंदिर तथा छोटे दो मन्दिर हैं। देवथल में संक्रान्तियों तथा पर्वों पर विशाल भंडारे एवं मेले आयोजित होत हैं। कुठाड़ वेजा, पटियाला, भरौली के लोग इसे अपना इष्ट देवता मानते है।

बीजू देवता और कुनिहार क्षेत्र

कुनिहार क्षेत्र में 'बीजू देओ' (बृजेश्वर) से जुड़ी एक लोककथा प्रचलित है। बीजू देव भगवान शिव के भक्त थे। वे रोज प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में देवथल से एक गुप्त गुफा – मार्ग से शिव – गुफा जिसे आज शिव – ताण्डव – गुफा का नाम दिया गया है – पूजा करने जाते थे और सूर्योदय से पहले लौट आते थे जब लोगों को इस रहस्य का पता चला तो वे गुफा में खोज – बीन करने लगे। कुनिहार रियासत के एक 'मांगते' (मंगलामुखी) ने गुफा के अन्दर दूर तक जाने का निर्णय लिया।

उसने अपने गले में एक ढ़ोल बांधा और एक कुत्ता साथ लिया। मंगलामुखी जब गुफा के अन्दर आधे रास्ते तक ढ़ोल बजाता पहुंचा तो शिवगणों ने रुष्ट होकर गुफा द्वार बन्द कर दिया। उधर दूसरी तरफ ढ़ोल की आवाज सुनकर वृजेश्वर देवता के दरवाणी ने भी अपनी तरफ से गुफा का मुहाना बन्द कर दिया। इस प्रकार कई दिनों तक मंगला मुखी और कुत्ता गुफा के अन्दर बन्द हो गये।

अचानक एक दिन देवथल के ऊपर जमीन पर जब कुछ औरतें धान कूट रही थी तो एक छोटी गुफा के अन्दर से ढोल की आवाजें सुनकर उस तरफ बढ़ी। उन्होंने जब गुफा द्वारा से कुछ पत्थरों को हटाया तो मंगलामुखी और कुत्ते को गुफा में फंसे देखा। उन्होनें उन्हें बाहर निकाला।

वृजेश्वर देव ने मंगलामुखी को प्रसन्न होकर उसे देवथल में पुजारी नियुक्त किया। लोगों की मान्यता है कि उस मंगलामुखी के वंशज बीजूदेव के आज भी पुजारी हैं। देवस्थल के पास ही भूमि प्रदान की गई थी। ये ब्राह्मण गौड़ शाखा के माने जाते हैं।

बीजूदेव के इस प्रसंग से पता चलता है कि प्राचीन रियासती काल में बीजूदेव का प्रभाव क्षेत्र कुनिहार तक रहा होता। कुठाड़, बेजा, पटियाला क्योंथल में तो देवता के अनेक देवस्थल पाये जाते हैं।

15
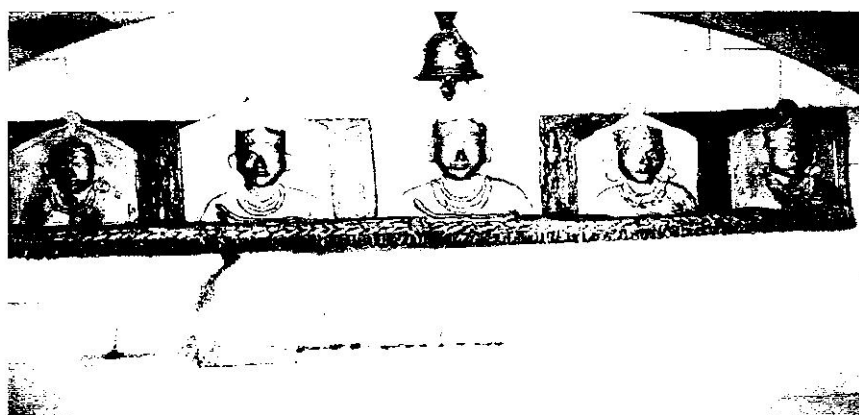
दरवाणी देव : भैरव का स्वरूप

दरवाणी शिव के भैरव अथवा 'काल भैरव' का स्वरूप माना जाता है महाकाय भयानक आकृति, श्यामवर्ण, लपलपाती जीभ, हाथ में लौह दण्ड लिए देवता के दर पर या प्रांगण के बाहर दरबान की तरह खड़ा मिलता है। यह देवता का रक्षक माना जाता है।

शिवपुराण के अनुसार मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मध्यान्ह में भगवान शंकर के अंश भैरव की उत्पति हुई थी। इस तिथि को 'काल भैरवाष्टमी' कहते हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार अंधकासुर नामक दैत्य अपने कृत्यों से अनीति व अत्याचार की सीमाएं पार कर रहा था, यहां तक कि वह अभिमान में भगवान शंकर पर ही आक्रमण करने का दुस्साहस कर बैठा। तब उसके संहार के लिए शिव के रूधिर से भैरव की उत्पति हुई।

ऐसा भी कहा गया है कि, ब्रह्मा ने शिव के वेशभूषा और रूप सज्जा देख कर शिव को तिरस्कार पूर्ण शब्द कहे। तब उसी समय उनके शरीर से कम्पायमान और विशाल दण्डधारी एक प्रचण्डकाय काया प्रकट हुई और ब्रह्मा के संहार के लिए आगे बढ़ी।

किन्तु शंकर द्वारा मध्यस्थता के कारण वह काया शान्त हुई। रूद्र के शरीर से उत्पन्न उसी काया को 'महाभैरव' का नाम मिला। बाद में शिव ने उसे अपनी पुरी काशी का नगरपाल नियुक्त किया। इस दिन को भैरवाष्टमी कहा जाता है। भैरव को काशी का 'नगरकोतवाल' भी कहा जाता है।

भैरव शिव का रूप है। इनकी संख्या 64 है। इन्हें रूद्र भी कहा गया। काल

भैरव ने अपनी अंगुली के नख से शिव निन्दा करने वाले ब्रह्माजी के पांचवे मुख को काट दिया। यह पांचवा मुख 'कपाल' उनके हाथ में आ चिपका। इससे भयभीत विष्णु और ब्रह्मा ने शतरूद्री का पाठ करके शिव से क्षमा मांगी। दोनों का अभिमान नष्ट हो गया। शिव ने उन्हें ब्रह्म-निवारण के लिए कायाव्रत करके और भिक्षावृत्ति धारण करने को कहा। वे भिक्षाटन करते हुए वाराणसी के 'कपालमोचन' नामक तीर्थ पर पहुंचे। वहां उनके हाथ से कपाल छूट गया। वहीं भैरव नगर की रक्षा हेतु अंगरक्षक नियुक्त हुए।

भैरव की आकृति त्रिशूलधारी, नीललोहित स्वरूप है। ललाट पर चन्द्रमा विराजमान है। इनके हाथ में पापियों के लिए दण्ड देने को लौह दण्ड रहता है।

लोक देवताओं का दरवाणी भी देवता के दरबार या कोतवाल की तरह भैरव के रूप में रक्षा करता है। यह मन्दिर के बाहर प्रांगण में दांए किनारे प्रायः सभी देवस्थलों में भयानक आकृति के रूप में स्थापित मिलता है।

देवता की पूजा एंव यात्रा में श्रद्धालु भक्तों के प्रश्नों के उत्तर 'हिंगरते' हुए देता है। यह इस 'खेल' में हिंगरते हुए अपनी पीठ पर जोर-जोर से सांकल मारता है तथा जमीन पर हाथ पांव पटकता है। इन आघातों से उसे कोई चोट नहीं लगती। दरबारी चमत्कार करते हुए आग के शोलों को भी चबा देते हैं। कई स्थानों पर यह सेर भर घी पीता भी देखा गया है। कई देवता के दरवाणियों को चिता पर भी बैठते देखा गया है। उनके कपड़ों में आग तक नहीं लग पाई है इस प्रकार उनके श्रद्धालु बताते हैं।

वास्तव में लोकदेवता के इस सहयोगी वीर की साम्यता शिवजी के भैरव से की जा सकती है। वैसे भी राजाओं के पुरखों को जब पितृदेवों के रूप में पूजा गया तो उन्होंने पौराणिक देवताओं की पूजा पद्धतियों को ही अपनाया।

भैरव के 52 वीर माने गए है। जिनकी शक्तियां भिन्न-भिन्न हैं। नवरात्रों में 'वीरसाधना' की जाती है। यह तान्त्रिक साधना मानी जाती है। जिस प्रकार हिन्दू धार्मिक परम्परा में देव, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, विद्याधर, सिद्ध, यक्ष, यक्षिणी, भैरव, भैरवी आदि सकारात्मक शक्तियां है। उसी प्रकार

नकारात्मक शक्तियों में दैत्य, दानव, राक्षस, पिशाच, पिशाचिनी, गुह्यक, भूत, बेताल, प्रेत आदि हैं। शिवभैरव के वीरों के नाम हैं, क्षेत्रपाल वीर, कपिल, बटुक, नरसिंह, गोपाल, भंवर, गरुड़, महाकाल, काल, स्वर्ण, रक्त स्वर्ण, देवसेन, घंटापथ, रूद्र, तेरा संघ, वरूण, कंधर्व, हंस, लौंकड़िया, वही, प्रियमित्र, कारू, अदृश्य, वल्लभ, वज्र महाकाली, महालाग, तुंगमद्, विद्याधर घंटाकर्ण, वैद्यनाथ, विभीषण, फाहेतक, पितृ, खड़ग, नाघस्त, प्रद्युम्न, श्मशान, मरूदग, काकेलेकर, कंफीलाम, अस्थिमुख, रेतोवैद्य, नकुल, शौनिक, कालमुख, भूत भैरव, पैशाच वीर, त्रिमुख, इचक, अट्टलाद, वास्मित्र वीर।

ये कालिका के दूत तथा भैरव के गण कहे गए हैं। लोकधर्म में ये नारसिंह वीर के 52 वीरों में अन्य स्थानीय नामों से पुकारे गए हैं। हिमाचल के समस्त देवी-देवताओं के मंदिरों के प्रांगण अथवा मंदिर के दर पर भैरव रूपी दरवाणी की आदमकश मूर्ति या प्रस्तर मूर्ति प्रतीक चिन्ह के रूप में मिलती है। प्रत्येक देवी देवता से जुड़ी विभिन्न कथाऐं इनसे सम्बद्ध मिलती हैं।

(i)

आदि गुफा-लूटरू महादेव अर्की

रूद्र-रूप शिवजी की आदि गुफा है-लुटरू महादेव अर्की! आदिकाल से प्राकृतिक स्वानिर्मित शिवलिंगों के कारण बाघल रियासत की स्थापना से पूर्व साधु-संत तपस्या हेतु यहाँ एकान्तवास करते रहे हैं। डेरा बाबा रूद्रू ऊना की तरह यह भी रूद्र-शिव का पावन-स्थल है। 'लूटरू' शब्द रूद्र, रूदर,लुदर, लुदरू और लुटरू में भाषा परिर्वतन से अस्तित्व में आया है। वास्तव मे भयंकर पहाड़ी गुफाओं में शिव का रूद्र रूप ही विराट-ईश्वरीय शक्ति मे कारण पूजनीय बना है। किन्नर कैलाश, मणिमहेश, अमरनाथ आदि हिमालयी क्षेत्रों में शिव के रूद्र रूप की स्मृतियां हैं।

शिव-गुफा एक प्राकृतिक चमत्कार है। आग्नेय चट्टानों से निर्मित इस गुफा की लम्बाई पूर्व से पश्चिम की तरफ लगभग 20 फुट तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ 42 फुट है। अगला भाग खुले आसमान के तले फैला है। गुफा की ऊँचाई तल से 6 फुट तक है। गुफा इस प्रकार स्वनिर्मित है कि वर्षा मे पानी की बौछारें आसमान से इसमें प्रवेश नहीं कर पातीं। ऊपर छत में ढलुआं चट्टान के रूप में एक कोने से प्रकाश अन्दर आ सकता है। गुफा की ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 5500 फुट हैं, इसके चारों ओर 100 फुट का क्षेत्र एक विस्तृत चट्टान के रूप में फैला है। गुफा के अन्दर मध्य भाग में 8 ईंच लम्बा प्राचीन शिवलिंग है, जो स्वनिर्मित है।

गुफा की छत में परतदार चट्टान के रूप में भिन्न-भिन्न लम्बाइयों के शिवलिंग लटके हुए हैं। प्रवेश के लिए 100 पौड़ियां बनाई गई है। वर्तमान में गुफा के नीचे विशाल धर्मशाला भवन निर्मित किया गया है जहां ठहरने की व्यवस्था हो सकती है। पौड़ियों के मध्यमार्ग में एक अन्य शिवलिंग

स्थापित है जहां मेलों और पर्वो पर साधु आसन लगाये डेरा जमाये रहते है।

गुफा के अन्दर दक्षिणी कोने में बाबा शीलनाथ बैठते थे जो पंजाब के चमकौर सहिब शिव मन्दिर परम्परा के महान महात्माओं में से एक थे। यह गुफा नाथ संप्रदाय के साधुओं की पवित्र-स्थली माना जाता है। गुफा का सम्बन्ध बाबा बालक नाथ से भी जोड़ा जाता है। लुटरू गुफा को भगवान 'परशुराम की पौल' कहा जाता है। इसका अर्थ है परशुराम की पवित्र डयोढ़ी-स्थली। सहस्रबाहु को मारने के पश्चात जब परशुराम हिमालय में पिता के आदेश से शिव आराधना को आये थे तो इस पवित्र-गुफा में उनके चरण पड़े थे। गुफा की ऐतिहासिकता का पता इसी बात से चलता है कि अर्की नरेश 'दीब' उठाकर परशुराम की कसम उठाते थे। परशुराम की कसम दिलाकर ही अनेक फैसले होते थे। कहते हैं राजा भगीरथ के प्रयत्न से जब गंगा देवी स्वर्ग से शिव की जटाओं में सिमटी थी तो विभिन्न स्थानों पर इसने छींटे पड़े थे। कुछ छींटे यहां की धारों पर भी पड़े थे, जो आज अश्किनी (शकनी) गंगा के रूप में विद्यमान है। नाथ-साधुओं ने इस गदगद् बहती जल धारा को गंगा के नाम अश्किनी के नाम पर नाम रखा जो आज शक्नी पुकारा जाता है।

इस गुफा में गोरखों ने 1805-1815 ई तक बाघल रियासत पर आक्रमण के समय आवास भी बनाया था। गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा ने अर्की को अपनी राजधानी बनाया था। इसकी धारें गोरखों के लिए सुरक्षित क्षेत्र था। अतः वे लूटरू, ताल, सुखण, घोघर की धारों पर सुरक्षित पत्थरों के दुर्ग बनाकर रहते थे।

शिवरात्रि के दिन बाघल रियासत का पारम्परिक शिवरात्रि पर्व एक प्रादेशिक मेले के रूप में विख्यात रहा है। पूरी श्रद्धा-विश्वास के साथ व्रत उपवास के साथ जंगली फलों, मेवों की भेंट पूजा के साथ के साथ लोग गुफा में रूद्र देव को प्रणाम करने आते है। जंगली कंद-मूल शिव को चढ़ाना तथा भोग लगाना पवित्र माना जाता है। इस क्षेत्र का कचालू किस्म का एक कंदमूल है 'तरड़ी'। यह पहाड़ियों में बेल के मूल में गहरे मिलता है। इसे खाना

एवं शिवजी को चढ़ाना पूण्य समझा जाता है। अर्की क्षेत्र का यह एक मात्र महान पर्व है जिसमें पूरा समुदाय सात्विक रहता है तथा मांसाहार अच्छा नहीं समझा जाता न ही शिव को बकरे की बली दी जाती। अर्की नगर से एक कि. मी. दूर इस गुफा में 200 व्यक्ति बैठ सकते हैं। अखंड कीर्तन भजन के साथ असंख्य साधु इस पर्व को भक्तिमय बना देते हैं। वास्तव में पर्व राजकीय पर्व रहा है आज इसकी व्यवस्था नगर पंचायत देखती है।

आदि गुफा मुटलू महादेव अर्की

आदिदेव शिव की पश्चिमी हिमालय में चौरासी गुफाएं पाई जाती हैं। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि भगवान शिव इन गुफाओं में निवास करते हैं। इन्हीं गुफाओं में अर्की की चोटी पर 'लुटरू' रूद्र महादेव की विशाल अद्भुत गुफा है तथा नगर के चरणों में एक सदाबहार नाले के किनारे 'मुटरू' महादेव की गुफा स्थित है। इसमें बिल्कुल पहाड़ी से सटी लम्बी गुफा में संगमरमर की तरह चूनेके कठोर पत्थरों से स्वयं निर्मित अनेक शिवलिंग हैं जिन पर आदिकाल से यहां अजस्र धाराएं बह रही हैं। शिव - गुफा को देखकर श्रद्धालु अवाक होकर मूर्तियों के आगे नतमस्तक हो जाता है। ऐसा लगता है अर्की के सारे शिखर का जल यहां विभिन्न धाराओं में शिवलिंगों का अभिषेक कर रहा हो।

'लूटरू' के साथ 'मुटरू' शब्द प्रचलन के कारण अभिन्न रूप से जुड़ा है। एक ओर जहां लुटरू महादेव आदि रूद्र की दिव्य गुफा (करीब 50 बाई 50 मीटर) हैं, दूसरी ओर पहाड़ी के तल पर 'मुटलू' महादेव की शिव गुफा स्थित है। 'मुटलू' शब्द का अभिप्राय है - स्थानीय भाषा में मीटणु पानी अर्थात मीटा हुआ आला 'जल'। मीटणु जल एक सरित - प्रवाह में तबदील होकर आगे बढ़कर अर्की खड्ड में मिलता है। कह सकते हैं कि स्वयं मिला हुआ जलस्रोत और चट्टानों में निर्मित स्वयं उद्भूत मिली हुई - लिंग - मूर्तियां! तभी तो लोक रूप बना - मुटलू - महादेव।

मुटलू महादेव अर्की बाजार से 500 मीटर की दूरी पर तलहटी में दो पहाड़ियों गाहर पशुपति नाथ मंदिर तथा अर्की गोशाला एवं शिव मंदिर की

पवित्र स्थलियों को स्पर्श करती रमणीक शिव-स्थली है। बाजार के मुहाने से पौड़ियां उतर कर गुफा मंदिर परिसर में पंहुचा जा सकता है। लगभग 100 मीटर मंदिर परिसर में दर्जनों आम के पेड़ तथा अनेक पीपल वृक्ष लहलहा रहे हैं। आमों के ये बाग तथा शिव मंदिर राणा किशन सिंह (1857 ई) के बनवाए हुए हैं।

शिव गुफा आज एक मंदिर के रूप में वर्तमान है। 10x10 फुट तीन बराबर कक्षों में विभाजित गुफा अपनी अपनी अलग विशेषता लिए है। गत वर्षों तक यह गुफा एक ही विस्तार में थी। तीनों कक्षों में सुंदर चूने पत्थरों के रूप में श्वेत-स्फटिक अनेक शिवलिंगों के साथ गुफाएं सुशोभित हैं। साथ ही संन्यासियों और नाथ साधुओं की परम्परा में पूजा स्थल है। जहां गदगद पानी बह रहा है जिससे एक घराट चल सके। वास्तव में अर्की नगर की पेयजल आपूर्ति इसी जलस्त्रोत से हो रही है। वर्ष 1805 - 15 ई. के समय गोरखा सेनापति ने इस स्थान पर शरण ली थी। गुफा की ऊपरी दक्षिण टेकरी पर पशुपतिनाथ मंदिर - गाहर स्थित है जहां गोरखा - सेना आवास बनाकर रहती थी।

प्रत्येक शिवरात्रि को पूरे क्षेत्र की जनता धार्मिक आस्था के अनुसार लुटरू - मुटरू की परिक्रमा करती है तथा अपनी फसलों का अंश मन्दिर को भेंट करती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनकी परिक्रमा से वर्ष भर घर परिवार में सुख - समृद्धि रहेगी। आज मुटलू गुफा में सारा वर्ष चहल - पहली रहती है। प्रत्येक तिथि पर्व पर लोग पूजा अर्चना तथा मनौतियां पूर्ण करते हैं।

वास्तव में मुटलू महादेव गुफा हिमालय की चौरासी गुफाओं में से एक महत्वपूर्ण गुफा है। अर्की को संस्कृति लुटरू मुटलू के बिना अधूरी है।

(ii)

वास्तुकला का अनूठा देवस्थल : अर्की का बणिया देवी मन्दिर

ग्रीष्म ऋतु का आगमन हिमाचल की धरती पर नई उमंगे एवं नया उल्लास लेकर आता है। पहाड़ी पर शरद ऋतु की सिकुड़न भी खत्म होती है तो रबी की फसल भी घर में आ जाती है। इसलिए सारे पर्वतीय क्षेत्र में विभिन्न देवी-देवताओं की पालकियां गांव-गांव में नृत्य करने निकल पड़ती है। ऋतु के समस्त उत्पाद देवता की भेंट चढ़ते है। ..... व्रत अनुष्ठान होते है तथा मेले लगते हैं........

'बणिया देवी' के स्थान पर ज्येष्ठ संक्रान्ति को 'बणिया देवी का मेला' बड़ी श्रद्धा एवं विश्वास व परम्परा से मनाया जाता है। इसी देवी के नाम पर गांव बसा है। जिससे लगता है कि पहले यहां जंगल था। इस मेले का प्रमुख उद्देश्य बणिया देवी दर्शन ही रहा है यह मूर्ति धारा नगरी से लाई गई थी। कहते हैं इसकी दस भुजाएं थी जो आज खण्डित है। लगता है उज्जैन से लाते हुए यह मूर्ति खण्डित हो गई होगी। यह देवी अर्की राजाओं की कुलजा थी।

इस देवी का ऐतिहासिक मन्दिर वास्तुकला तथा मूर्तिकला की दृष्टि से अर्की नरेशों की कलाप्रियता का अनूठा स्मारक है। अर्की (बाघल) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन इसके माध्यम से बखूबी किया जा सकता है। इस मन्दिर की तुलना चम्बा, मण्डी, कांगड़ा तथा कुल्लू के मध्यकालीन मन्दिरों से की जा सकती है। 14वीं शती ई. में जब राजपूत सामन्त मालवा (धारानगरी) से यहां आये थे तो अपने इष्ट देवताओं की मूर्तियां भी साथ लाये थे। हिन्दू मन्दिरों की शिखर शैली तथा कलशों की परम्परा में उन्होंने हिमाचल के अनेक स्थानों पर इन मूर्तियों को मन्दिरों में प्रतिष्ठित किया था। अपनी लम्बी यात्राओं तथा मुसलमान बादशाहों की

विध्वंसक नीति के कारण ये मूर्तियां टूटी-फूटी हालत में यहां लाई गई थीं। बणिया देवी (दुर्गा-जालपा) की यह प्राचीन मूर्ति भी 14वीं, 15वीं शती की अर्की नरेशों की तत्कालीन स्मृति है।

राजा भोज तथा पराक्रमी विक्रमादित्य खानदान के ये वंशज अर्की के अनेक मन्दिरों के निर्माता हैं। इन मन्दिरों की वास्तुकला शिल्प की दृष्टि से अत्युतम है। सैंकड़ो वर्षों के झंझावातों, वर्षा तथा तीव्र ताप को समेटे ये मन्दिर उस समय के वैभव की याद दिलाते हैं।

बणिया देवी मन्दिर से गूगा राणा (सम्भवतः, 15वीं शती) का सम्बन्ध माना जाता है, तथा इसकी पूर्णता में राजा भूप चंद (1757 ई.) का योगदान रहा।

मूर्ति कला का बेजोड़ नमूना

बणिया देवी की मूर्ति, कला का बेजोड़ नमूना है। यह साढ़े तीन फुट प्रस्तर शिला को तराश कर बनाई गई है। यह मध्यकालीन राजपूत कला की मूर्ति-परम्परा में ही निर्मित हुई है। मन्दिर में इस मूर्ति के अतिरिक्त एक अन्य पत्थर की मूर्ति के है जो लगभग 8 इंच x 6 इंच की किसी देवी की मूर्ति है। इससे छोटी एक पत्थर की शीला में दो नृत्य करती देवियों की उत्कीर्ण चित्राकृतियां हैं। ये समय-समय पर अर्की नरेश द्वारा लाई गई लगती है।

मन्दिर शिखर शैली का है जो 9 फीट ऊँचें, 25 फुट x 20 फुट चबूतरे पर चार दीवारी से घिरा हुआ है मन्दिर 15 फुट ऊँचा है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई आठ x आठ फुट ऊँचाई से मन्दिर गुम्बदाकार है। कलश चूने-मिट्टी (सुर्खी) का बना है। इसकी आकृति कमल दल के ऊपर घड़े के समान है। मन्दिर में चूने-मिट्टी तथा कूप के पत्थर का इस्तेमाल किया गया है। इस पत्थर को 'कोऊ' कहा जाता है, सम्भवतः यह जुड़ने में उत्तम होता है। मन्दिर के जगमोहन में बैठने की पर्याप्त सुविधा है। मन्दिर में प्रवेश के लिए 9 पीड़ियों से गुजरने के बाद इस चार फुट लम्बे परिक्रमा पथ में घूमा जा सकता है।

रमणीय स्थल

मन्दिर के परिसर में घने पेड़ों की छाया है। 5 बीघे तक फैले परिसर के कुछ भाग में जामुन, झड़ीनू, कंक्कड़ तथा खड़की के ऊंचे पेड़ो के नीचे मेला लगता है। मंदिर के पास कल-कल बहते पानी के नाले हैं जिससे यह स्थान 'जात्रुओं' के लिए बहुत आनंददायक तथा रमणीक लगता है। बणिया देवी का सारा क्षेत्र ही प्राकृतिक जल-स्रोतों से भरपूर है। यही कारण है कि राजाओं ने इसे अपना 'सल' (राजा की भूमि) बनाया था।

बणिया देवी अर्की से 10 कि. मि. दूर है। मन्दिर सड़क से खेतों के बीच पगडण्डी के रास्ते 300 मीटर दूरी पर स्थित हैं। मोटर द्वारा भराड़ीघाट धुंदन के मार्ग से भी यहां पहुंचा जा सकता हैं भराड़ीघाट से यह स्थान करीब नौ किलो मीटर की दूरी पर है।

बणिया देवी का अर्थ है- वन की देवी। किसानों के गौधन तथा खेतों की देवी।

देवी की उत्पत्ति

इस क्षेत्र के लोग देवी को स्वयं उत्पन्न हुई मानते हैं। एक दिन इस स्थान पर एक किसान जब हल चला रहा था तो उसका हल किसी पत्थर में फंस गया। जब उसने कठिनाई से हल को खींचा तो देखा कि हल किसी बड़ी मूर्ति में फंसा हुआ है मूर्ति के सिर से खून बह रहा था। उसने वहां खुदाई की तब देखा तो विराट देवी की मूर्ति थी। तभी इस स्थान पर राजा द्वारा मन्दिर बनाया गया।

देवी के विषय में कोई लिखित सामग्री नहीं है। यहां के पुराने लोगों के अनुसार गूंगा राणा को अपनी यात्रा के दौरान सपने में देवी के दर्शन हुए थे। गूगा राणा उस दौरान अपने शत्रुओं से आत्म-रक्षा में भटक रहा था। सपने में देवी ने प्रकट होकर कहा 'राणा में तुम्हारी कुलजा हूं। मेरा मन्दिर इसी स्थान पर बनना चाहिए। मैं तुम्हारी रक्षा यहीं से करूंगी तब गूंगा राणा ने ऐसा ही किया। यह अपने युद्ध अभियान से पूर्व देवी के मन्दिर अन्तिम दर्शन को जाया करता था।

पुराने समय में यहां बना जंगल था जिसमें एक विशेष प्रकार की कांटेदार झाड़ियां थीं। इस कांटेदार झाड़ी को 'चमोल' कहते हैं। इसकी वजह से यहां कुछ भी फसल पैदा नहीं होती। विषैले जीव जन्तु और हिंस्र बाघ यहां विचरते थे।

बणिया देवी मेला

जब देवी की प्रेरणा से राजा ने यहां मन्दिर बनवाया तो यह स्थान धन - धान्य से पूर्ण हो गया है। प्राचीन काल में बणिया देवी मेले के अवसर पर देवी के नाम पर मनौतियों के रूप में बकरे की बलि दी जाती थी। स्वतंत्रता के बाद बलि प्रथा बन्द कर दी गई। आज लोग देवी को फसल की भेंट करते है।

बणिया देवी में एक अन्य मेला ज्येष्ठ सक्रान्ति के बाद प्रथम मंगलवार को मनाया जाता है। जिसे ग्यासियों का मेला कहते हैं इन ग्यासी देवियों को छोटे बच्चों की रक्षिका माना जाता हैं इनका मन्दिर बणिया देवी मन्दिर के पास ही नाले में स्थित है। यहां इन देवियों के प्रतीक रूप में गोलक पत्थर रखे हुए हैं जिन पर मेले तथा सक्रान्तियों के दिनों में श्रद्धालु दूर - दूर से आकर अन्न - धन तथा वस्त्र चढ़ाते हैं। मन्दिर की मिट्टी बच्चों के सिर में लगाते हैं। बणिया देवी मन्दिर बाघल रियासत की संस्कृति तथा नरेशों की कला प्रियता को सहसा ही उजागर कर देता है।

बणिया देवी जालपा – ज्वालादेवी का स्वरूप

जालपा या ज्वालामाता देवी की ही शक्ति है। इस देवी का मूल मन्दिर राजस्थान के जयपुर के जोबनेर में स्थित है। यह धाम जयपुर से 45 कि.मी. पश्चिम में ढूढ़ाड़ अंचल के प्राचीन कस्बे जोवनेर में स्थित है। ज्वाला माता जोवनेर के नगर की अधिष्ठात्री देवी है। वहां की पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने सती के शव को कन्धे पर उठाकर ताण्डव किया था। उस समय सती का शरीर छिन्न - भिन्न हुआ और विभिन्न स्थानों पर उनके अंग गिरे। जोबनेर पर्वत पर उनका जानु भाग (घुटना) गिरा जिसे उसका प्रतीक समझकर ज्वालामाता या जालपा के रूप में पूजा जाने लगा।

इस मन्दिर के सभामण्डप के स्तम्भ पर प्रतापी चौहान शासक सिंहराज (965 ई) का शिलालेख उत्कीर्ण है। इससे प्रमाणित होता है कि यह देवी चौहान वंश की कुलजा रही होगी।

हिमाचल में चन्देल वंश के राजाओं - कहलूर की कुलदेवी सगीरठीदेवी मानी जाती है। लगता है चन्देल राजाओं ने ही कहलूर में जालपा के मन्दिर निर्मित किए थे। उनसे प्रभावित होकर मण्डी, बाघल, के शासकों ने भी जालपा के मन्दिर जलाशयों के आस - पास निर्मित किए। बाघल क्षेत्र में धुंदन, दाड़ला, कोटला, छामला आदि स्थानों पर जालपा देवी के मंदिर हैं।

बणिया देवी बाघल रियासत के राजाओं की कुल देवी रही है। इस मन्दिर का निमार्ण भी अर्की के राजा (1853 वि.) जगत सिंह के समय में हुआ है। इसका प्रमाण बखालग बाग गांव में स्थित शिलालेख के शिव मन्दिर के निर्माण के समय लिखा मिलता है। इस समय राणा जगत सिंह शासन करते थे। इस राजवंश के अतिरिक्त अर्की क्षेत्र के मियां जाति के लोग इसे अपनी कुलदेवी मानते हैं तथा छमाही पर आज भी इसकी पूजा करते हैं। ऐसा माना जाता है कि राज ध्यानसिंह (1877 ई) के समय किसी रानाी ने बखालग शिवमन्दिर का कार्य पूर्ण करवाया था इसलिए उसका नाम शिलालेख पर अंकित मिलता है। कहते हैं कि 1643 ई में जब बाघल की राजधानी धुंदन से अर्की बदली गई तो रानियों के कहने पर कि जालपा का मंदिर अर्की के समीप कहीं पानी की जगह बनाया जाए तो बणियादेवी के पास मंदिर का निर्माण करवाया गया।

(iii)

ऐतिहासिक भद्रकाली मंदिर-जखौली देवी

अर्की का ''जखौली देवी'' भद्रकाली का स्थानीय नाम है। यह हिमाचल के प्राचीनतम मन्दिरों में से एक है। यह कलापूर्ण मन्दिर बाघल रियासत की स्थापना 14वीं शताब्दी से पूर्व का मन्दिर है जो 16वीं शताब्दी में एक खुदाई में अस्तित्व में आया था। इसीलिए की लोक धारणा में इसे ''स्वयं उत्पन्न'' (अपपन्ना) माना जाता है। लोगों के अनुसार देवी ने इसे स्वंय बनाया था। खुदाई में इसके कलश तथा अनेक मूर्तियां खण्डित हो गई थी, जो अपने मूल रूप से मन्दिर में स्थापित अथवा व्यवस्थित की गई हैं। इस ऐतिहासिक भद्रकाली मन्दिर के परिसर में परम्परा से दुर्गाष्टमी में दिन (आठे को) ''जखौली मेला'' धार्मिक आस्था - विश्वास से मनाया जाता है। अर्की के राजा यहां सर्वप्रथम पूजा करने आते थे। लोग अपनी खरीफ की फसल के नए उत्पादन देवी को भेट करते हैं। देवी को बकरे की बलि देने की परम्परा है लेकिन अब बंद है।

जखौली का शाब्दिक अर्थ है 'यक्ष - अवली' अर्थात यक्षों का सरोवर' शास्त्रीय धारणा में यक्षों का सम्बन्ध जल स्रोतों से जोड़ा गया है। यहां एक बड़े विशालकाय पेड़ के तल से एक छोटी नदी के बराबर पानी गदगद बह रहा है। इस पानी से जखौली गांव के अतिरिक्त अनेक गांवों की सिंचाई होती है। इस अथाह स्रोत के बारे में यहां एक जनश्रुति प्रचलित है - यहां के प्राचीन राजा ने एक नटुये के चमत्कारों से खुश होकर नटुए से यह शर्त रखी कि यदि वह यहां पानी निकाल दे तो उसे राज्य का एक भूखण्ड ईनाम में दिया जाएगा। नटुए ने पानी निकाल दिया लेकिन राजा ने शर्त पूरी न करके उसे मरवा दिया जिसके कारण पानी निरंतर बहता रहा। कहते हैं राजा को इस पाप के कारण मिरगी की बीमारी लग गई।

दुर्गाष्टमी के अवसर पर राजा अर्की पैदल जुलूस में कीर्तन मण्डली के साथ स्वयं पूजा - अर्चना करने आते थे जिससे मेले का रूप निखर जाता था। आज भी परम्परा पूजा - अर्चना के अलावा यहां अनेक सांस्कृतिक - कार्यक्रम आयोजित होते हैं। यहां का लोक नाटक 'करयाला' बहुत प्रसिद्ध रहा है। मेले का प्रमुख आकर्षण यहां के विशालकाय पेड़, झील के रूप में बहता पानी तथा भद्रकाली मन्दिर है। बाद में यहां शिव मन्दिर की स्थापना की गई।

वस्तुकला का अद्भूत नमूना

भद्रकाली का यह मन्दिर वास्तुकला - मूर्तिकला की दृष्टि से 11 - 12वीं शती में निर्मित मध्य भारत में बने मन्दिर की शैली के समान लगता है। मन्दिर की मूर्तियां तथा दीवारें प्रस्तर शिलाओं को तराश कर बनाई गई है। पत्थर कहीं दूर से लाया गया था। वास्तुकला का कमाल यह है कि बड़ी - बड़ी लम्बी चौकोर चट्टानों को घड़कर तथा चूने - सूर्खी के प्रयोग से तीन लघु मन्दिरों को आपस में जोड़ा गया है। ये तीनों मन्दिर एक ही चट्टान पर हैं। मन्दिर कलश नौ फुट ऊँचाई पर स्थापित है। मन्दिर में पूर्णतया चूने सूर्खी का प्रयोग है किन्तु आश्चर्य यह है कि पत्थरों के जोड़ स्पष्ट दिखाई देते हैं। अद्भुत शिल्प के कारण इसे पाण्डवकालीन युग से इसीलिए जोड़ा जाता है।

भद्रकाली के पांव के नीचे शिवजी की जगह एक कंकाल की खण्डित मूर्ति है जो लगता है टूटने की वजह से बाद में लगाई गई है। मन्दिर परिसर में देवियों, यक्षों तथा गंदर्भों की मूर्तियां रखी गई हैं जो संभवत: खुदाई में निकाली होगी।

यहां ग्वालू के विषय में दंतकथा प्रचलित है। कहते हैं भगवती जब यहां मन्दिर का निर्माण कर रही थी तो स्वंग के लिए पौड़ियां बना रही थी किन्तु एक ग्वाले ने रात्रि को यह देखा तो पौड़ियां बननी बंद कर दी। मन्दिर परिसर में पत्थर की संयुक्त तराशी पौड़ियां भी रखी गई हैं। कहते हैं ग्वालू इसलिए देवी के पैरों पर पड़ा है। एक अन्य दंतकथा के अनुसार एक ग्वाला यहां के लोगों की गौवें चराया करता था। रोज एक चमत्कार होता था कि

उसकी गौओं में एक सफेद गाय चरने आ जाती थी जो शाम के समय रोज पानी के स्रोत वाली गुफा में जाकर लुप्त हो जाती थी। एक दिन ग्वाले ने उसका पीछा किया और गुफा में चला गया। वहां उसने देखा कि एक साधु समाधि में बैठा है तथा हवन सामग्री पास रखी है। उसने साधु को प्रणाम किया। साधु ने ग्वाले को कुछ जौ की मुट्ठियां प्रसाद में दी, ग्वालू ने उन्हें चादर में रख लिया और प्रमाण कर बाहर चला आया। उसने उन्हें रास्ते में एक खेत में डाल दिया लेकिन घर जाकर जब उसनपे अपनी चादर में दो तीन दाने चिपके देखे तो वह हैरान रह गया – वे सब सोने की मुद्राओं में बदल गए। इस घटना से लोगों को देवी शक्ति के चमत्कारों का पता चला।

जरवौली देवी मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से ही उतम नहीं है, वरना इससे मध्यकालीन इतिहास की परतें भी खुलती हैं। आज मन्दिर के चारों ओर दीवारों तथा छत का निर्माण किया गया है। तथा इसके मूल ढांचे से छेड़छाड़ की गई है, फिर भी यह वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना लगता है। सैंकड़ों वर्षों से इसकी स्थानीय पत्थर ''कोऊ'' से बनी दीवारें इसकी मजबूती का प्रमाण है।

जरवौली देवी मन्दिर के अलावा वर्ष भर मन्दिर में श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है तथा यज्ञ अनुष्ठान होते रहते हैं। आज यहां आवागमन के लिए अर्की से आधे घण्टे में आसानी से पंहुचा जा सकता है।

(iv)

लक्ष्मी नारायण मंदिर अर्की : मुगल शैली का नमूना

बाघल रियासत का ऐतिहासिक लक्ष्मीनारायण मन्दिर अर्की में राजधानी बनने के समय का प्राचीन मन्दिर है। अर्की राजवंश के प्रमाणों के अनुसार राणा सभाचन्द ने 1643 ई. में धुन्दन से राजधानी बदलकर अर्की को राजधानी बनाया था। राजधानी बदलने का कारण बाघल की सीमाओं पर कहलूर की छेड़छाड़ और अर्की की प्राकृतिक सुविधाएं थीं। राजवंश के लिए यह एक सुरक्षित स्थान भी था। प्रारम्भ में कच्चे राजमहलों का निर्माण करवाकर राणा पृथ्वीचंद ने महलों का कार्य पूर्ण कियाा था। राणा पृथ्वी चन्द (1670 - 1727 ई.) ने वर्तमान महलों के साथ सुरक्षा की दृष्टि से पक्के किले का निर्माण शुरु किया था जिसे बाद के शासकों मेहरचन्द राणा (1727 - 1743 ई.) तथा राणा भूपचन्द ने (1743 - 1778) महलों के निर्माण के साथ पूरा किया।

स्वाभाविक था कि बाघल का प्रथम शासक इस नये स्थान पर अपने इष्ट देवता एवं कुलदेवता का देवस्थान निर्मित करता, अत: सभाचन्द ने 'गौशाला' परिसर के पास अपने इष्टदेवता लक्ष्मीनारायण मंदिर की स्थापना की तथा एक सुन्दर नये शैली - शिल्प पर इस मंदिर का निर्माण करवाया।

वास्तु - शिल्प

हिमाचल प्रदेश में वैष्णव धार्म के ऐसे प्राचीन मन्दिर बहुत कम मिलेंगे, जो मस्जिद की वास्तु शिल्प - शैली पर बने हों। यह मंदिर मस्जिदनुमा सपाट छत और विशाल जगमोहन एवं गलियारे से संयुक्त है। यह भारतीय वास्तु - कला के शिखर - शैली के मन्दिरों के शिल्प से भिन्न है। किन्तु अपनी

भव्यता एवं सुन्दर खुले प्रांगण में यह आज भी नया लगता है। मंदिर की ऊँचाई लगभग 12 फुट है जिसमें समतल छत है। मंदिर 35X35 फुट के चबूतरे पर निर्मित है। चबूतरा भूमि से 3 फुट ऊँचाई लिए है। मंदिर की परिक्रमा 5 फुट चौड़ाई लिए है। मंदिर की चारों दिशाओं में मध्य में आले हैं जो दीपों के लिए हैं। इनमें कोई मूर्ति स्थापित नहीं है। परिक्रमा के सामने तीन स्तम्भों पर मुख्य मन्दिर की छत के साथ एक और सपाट छत है जिसकी तुलना मस्जिद से की जा सकती है। स्तम्भों से गुजरते हुए मंदिर में प्रवेश किया जा सकता है। इस प्रकार जगमोहन की चौड़ाई 15 फुट तक विस्तृत है।

अर्की क्षेत्र में किसी अन्य मन्दिर का इतना बड़ा परिक्रमा - पथ नहीं है। लगता है अर्की के प्रारम्भिक शासक ने किसी मध्य भारतीय मुस्लिम कारीगर से मुगल शैली मिश्रित अनुकरण पर यह मन्दिर निर्मित करवाया था। मन्दिर चूने - सुर्खी एवं पक्की ईटों से बनाया गया था।

मूर्तियाँ

मन्दिर में भगवान विष्णु की 9 ईंच लम्बी अष्टधातु की चतुर्भुज मूर्ति है, जो आसन की मुद्रा में हाथों में शंख , चक्र , गदा, पद्म धारण किए हैं। साथ में एक हाथ में सांप पकड़े हैं। गोदी में लक्ष्मी विराजमान है। यह मूर्ति अर्की राजवंश के इष्टदेव के रुप में पूज्य है। राज- वंशावली के अनुसार अर्की का प्रारम्भिक शासक अजय देव (14 वीं शती ई.) अपने साथ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति, खाण्डा, छड़ी , नगाड़ा एवं स्वर्ण छत्र आदि साथ लाए थे। छत्र बहुमूल्य था जिसे इस वंश के अन्तिम राजा राजेन्द्र सिंह पंवार ने 1962 ई. में चीनी आक्रमण के पश्चात भारतीय रक्षा - कोष के लिए दान दे दिया था। कहते हैं मूल मूर्ति के ऊपर स्वर्ण - मुकुट, कुण्डल तथा मुकुट में अमूल्य हीरा चमकता था।

लक्ष्मी - विष्णु के अतिरिक्त मन्दिर में गोपाल , गणेश तथा हनुमान की संगमरमर निर्मित आदमकश मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त विष्णु की एक छोटी तांबा - मिश्रित मूर्ति , एक तीन ईंच लम्बी पीतल की विष्णु

मूर्ति भी विराजमान हैं जो संभवतः दान में प्राप्त की गई होंगी । दो अन्य लक्ष्मी-विष्णु की धातु- मूर्तियाँ दोनों ओर आलों में रखी गई हैं । एक अष्टधातु की दुर्गा की मूर्ति और भगवान गरुड़ की छोटी मूर्ति भी पूजा-स्थल में वर्तमान है। इन समस्त मूर्तियों की पूजा नियमित होती रही है।

पर्व एवं पूजा – अर्चना

प्राचीन महासू की 18 ठकुराइयों में बाघल-अर्की में दशहरा-पर्व 15 वीं शती से मनाने की परम्परा मिलती है जिसे राणा सभाचन्द ने 1643 ई में प्रारम्भ किया था। यह रियासत का सबसे बड़ा एवं भव्य धार्मिक आयोजन होता था। ऐतिहासिक दस्तावेजों में विवरण मिलता है कि दशहरे के शुभ-अवसर पर राणा अर्की ने लक्ष्मीनारायण की मूल-मूर्ति, खाण्डा तथा छड़ी-धवज आदि पालकी में सजाकर अपने पुरोहितों के गांव बातल ले जाने की परम्परा प्रारम्भ की थी। बातल के मध्य खेतों के बीच रावण, कुम्भकर्ण एवं मेघनाद की मूर्तियों का दहन किया जाता था। रावण-दहन से पूर्व निशानेबाजी का आयोजन होता था जिसमें दो घड़े मचान पर रखकर सर्वप्रथम राजा अर्की निशाना लगाते थे। निशाने की परम्परा 19 वीं शताब्दी से शुरु हुई थी जब कि दशहरा पहले से मनाया जाता रहा। ग्रामवासी लक्ष्मीनारायण की पालकी की पूजा-अर्चना करते तथा फसल के नये उत्पाद भेंट करते। आज भी दशहरा मनाने की परम्परा जीवन्त है। आज भी अर्की से बातल तक सजी देवताओं की पालकी के साथ जनसाधारण जुलूस की शक्ल में शंख-घण्टियाँ तथा ढोल-नगाड़े के साथ बातल पहुंचते हैं तथा मेला आयोजित होता है जो दो दिन तक चलता है।

शरद पूर्णिमा के दिन मंदिर परिसर गौशाला में प्राचीन काल से 'कृष्ण लीला' नाटक खेलने की परम्परा रही। यह पर्व रियासत में श्रद्धा एवं पूजा-अर्चना के साथ आयोजित होता रहा है। आज इस दिन क्षेत्र के अनेक स्थानों पर लोकनाट्य बरलाज एवं करियाला आयोजित होता है।

राजा की ओर से इस मंदिर में महन्त की नियुक्ति की गई थी । राजा

सुरेन्द्र सिंह के समय महन्त साधुराम इसके पुजारी थे। इसके बाद श्री गोविन्द राम इसके पुजारी रहे। वर्तमान में इसी परिवार के श्री कुलराज किशोर इसके संरक्षक तथा पुजारी हैं जो इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध गायक कलाकार भी हैं।

आज यह मंदिर सार्वजनिक स्थान जैसा नहीं लगता, एक परिवार ही इसकी देखरेख करता है तथा उनका आवास भी इस मंदिर से संयुक्त हैं। कोई उत्सव-कमेटी या सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं है। बहुत कम चहल-पहल मंदिर में दृष्टिगोचर होती है । कह सकते हैं कि यह भव्य मंदिर बाघल रियासत का 400 वर्षों का इतिहास अपने में समेटे हैं।
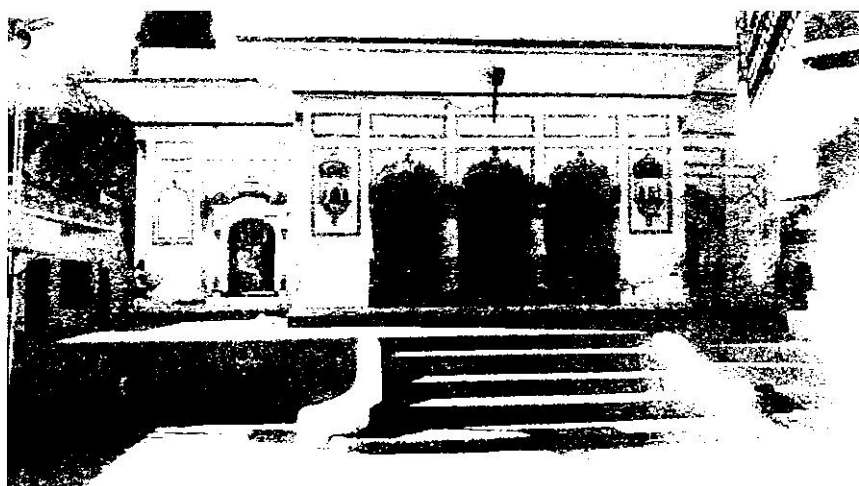
लक्ष्मी नारायण मंदिर 1685 ई.

(V)

ऐतिहासिक बातलेश्वर शिवालय

इतिहास

आजादी से पूर्व ऐतिहासिक गांव बातल महासू की प्राचीन तीस रियासतों में सबसे बड़ा गांव था। जनसंख्या की दृष्टि से वर्तमान तक कुल्लू के निर्मण्ड गांव के पश्चात इसी का नाम लिया जाता रहा है, किन्तु आज औद्योगीकरण के कारण गांवों, कस्बों एवं उपनगरों के रुप में विकसित हो गए हैं। बातल का सम्बन्ध बाघल रियासत के प्रारम्भिक शासकों से रहा है। 1643 ई. में राणा सभाचन्द ने जब धुन्दन से राजधानी बदलकर अर्की की नींव रखी तो उनके पुरोहितों, पण्डितों को इस गांव में बसाने का निर्णय लिया गया था। कहते हैं इनसे पूर्व यहाँ भाट ब्राह्मण परिवार रहते थे। कुछ जमीने मांजू गांव के कनैतों की भी थीं।

बातल की प्राचीनता की पुष्टि गांव का शिव मंदिर है जिसे राणा जगत सिंह के भाई मदनसिंह ने संवत् 1814 विक्रमी श्रावण पूर्णिमा सन् 1757 ई को निर्मित करवाकर यहाँ यज्ञ का आयोजन करवाया था। इसके प्रमाण में मन्दिर में स्थापित शिलालेख है जिसमें लिखा है –

"संवत 1814 श्रावण पूर्णे चेंद सदाशिव मन्दिरम्। शुभे अस्मिन स्थाने मदन सिंहेन कारितम्। चूड़ामणि कृत वासुकिः भवे भवतु भव्याय लीला ताण्डव पण्डित ।। "

यद्यपि मन्दिर 1757 ई. में बनकर तैयार हुआ हो, परन्तु इसकी स्थापना राणा पृथ्वी चंद (1670 – 1727ई.) के समय हुई थी। इसके पश्चात बातल के दूसरे मंदिर तथा अर्की के अन्य मन्दिरों को शिवशरण सिंह एवं किशनसिंह (1828 – 1877 के मध्य) के समय राज परिवार की रानियों के

कहने पर बनवाया गया था, जब बाघल की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। वैसे शिवशरण सिंह ने गोरखों द्वारा नष्ट - भ्रष्ट भवनों तथा अर्की बाजार का निर्माण करवाया। उसने महलों के साथ ' दीवानखाना ' भवन बनवाया तथा चित्रकला भी करवाई जो आज भी दर्शनीय है। शिवशरण ने कहलूर की मदद से अर्की रियासत में आमों के बाग लगवाए तथा एक डेरी - फार्म भी खोला। इस कारण अंग्रेजों ने बाघल को माडल स्टेट का दर्जा दिया था।

शिव मंदिर की वास्तुकला

बातल का शिव मंदिर राजस्थान के शिखर - नागर मंदिरों की शैली - शिल्प पर बना है। इसका कारण यहां के शासकों को मध्य भारत राजस्थान (तत्कालीन मालवा - धारा) से सम्बन्ध रखना था। मध्य हिमालय एवं शिवालिक क्षेत्र के अधिकांश मन्दिर नागर - शैली में बने हैं किन्तु उनका आयतन लघु है। मध्यभारत के मन्दिरों का आयतन बड़ा रहा है इसका कारण सामग्री की उपलब्धता एवं स्थान की पर्याप्तता रही है। आठवीं शती के पश्चात बने अधिकतर मन्दिर 'पंचायतन' शैली के हैं जिनमें प्रधान वितान केन्द्रित मंदिर के ढके बरामदों से जुड़े रहते हैं। इनमें आगे मण्डप होता है और ऊपर शिखर पर आमलक। इनके मध्य के प्रधान मंदिर का शिखर उत्तुंग होता है।

बातल का शिवालय भी इसी शैली का सुन्दर लघु नमूना है जो इन अधिकतर विशेषताओं से परिपूर्ण है। किन्तु तत्कालीन सुविधा एवं स्थान के दृष्टिगत इसके चार कोनों में लघु - मंदिर नहीं है। उसकी जगह मंदिर के आगे एक कोने में शिवजी के सहायक देवताओं की मूर्तियाँ चबूतरे पर रखी होती थीं। वर्तमान समय में मंदिर के रख - रखाव में तनिक परिवर्तन किया गया है किन्तु मूल वास्तु - संरचना को कोई अन्तर नहीं पड़ा है। ईटों और चूने सुर्खी से बना मंदिर देखने में भव्य एवं नया लगता है।

मंदिर लगभग 50 फुट x 30 फुट ऊँचे प्लेट फॉर्म (चबूतरे) पर विस्तृत है। मुख्य मंदिर लगभग 20X15 फुट लम्बाई - चौड़ाई लिए गोलाकार शिखर तक लगभग 20 फुट ऊँचाई लिए है। चारों ओर लगभग 4 फुट

परिक्रमा - पथ बिना छत के विस्तार में है। मंदिर के तीनों दीवारों पर प्राचीन चूने - सुर्खी निर्मित आदमकद गणेश जी, कार्तिकेय एवं दुर्गा की सुडौल मूर्तियां हैं जो मूर्तिकला का सुन्दर नमूना है। मंदिर के कलश के नीचे मध्य भाग में तीनों ओर बजरंगबली की उत्कीर्ण लघु - मूर्तियां है। गुम्बदाकार कलश स्वर्ण मण्डित धातु युक्त हैं।

मंदिर का गर्भगृह 9x9 फुट लम्बाई - चौड़ाई में एक कुण्ड से संयुक्त है जिसमें शिवलिंग एवं जलहरी आदि स्थापित हैं। गर्भगृह में तीनों ओर दीवारों पर आले हैं जिनमें मूर्तियां रखी हुई हैं। मंदिर से संयुक्त स्तम्भों से युक्त मण्डप - गृह है जिसे एक ओर से बन्द कर दिया गया है। इसमें आदमकद लक्ष्मी - नारायण की मूर्ति रखी गई है।

शिवलिंग की मूर्ति ढाई सौ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश की क्षिप्रा नदी अथवा किसी पवित्र नदी से लाई गई थी। शिवलिंग का आधार तांबे के आवरण से आवेष्टित है। समस्त ग्रामवासी प्रातः मंदिर में शिवजी पर जल चढ़ाना अपना अति आवश्यक नियम मानते रहे हैं, किन्तु आज यह नियम घर में रखे ठाकुरों की पूजा से पूर्ण किया जाता है। फिर भी प्रातः भक्तों की भीड़ रहती है।

उत्सव एवं अनुष्ठान

शिवालय गांव के बिल्कुल मध्य में स्थित है। मंदिर परिसर एवं चौराहे को 'चौंरा' कहते हैं। चौंरे से गांवों के चारों ओर की गलियों को आखिरी छोर तक खुले रास्ते बने हैं। किसी भी सामाजिक गतिविधि को यहां एकदम पहुंचा जा सकता है। गांव प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा को समेटे है। यदि कहें कि यह गांव वर्ष भर पूजा - अनुष्ठानों को समर्पित है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रत्येक पर्व, संक्रान्ति, पूर्णिमा, त्यौहारों, वारों को व्रत - पाठ, भागवत कथा नियमित होते रहते हैं। चौंरे के बीच यज्ञ के रूप में सर्व साधारण को प्रायः भोज होते रहते हैं। भागवत कथा एवं अन्य धार्मिक गतिविधियां मंदिर परिसर में होती रहती हैं।

एक दिलचस्प परम्परा शिवजी को हर छमाही फसल पर 'रोट'

(अन्न यज्ञ) का आयोजन होता है जिसमें छोटे बच्चे एक घण्टी बजाते सारे गांव की गलियों में आवाज देते जाते है - ''रोटो खे लकड़िया'' यानी रोटी बनाने के लिए लकड़ियां भी पंहुचाओ और फसल का आटा - दाल आदि भी। मंदिर में नियमित पूजा पाठ चला रहता है। शाम को बच्चे - बूढ़े आरती गाते हैं।

चमत्कारः

सदियों से गांव में एक प्रथा चली आ रही हैं कि जब इलाके में अकाल या अनावृष्टि हो तो गांव वाले शिव की पिंडी के ऊपर तक मंदिर के गर्भगृह को सैकड़ों बाल्टियों के पानी से डूबो देते हैं और शिवजी का पूजन - अनुष्ठान होता है। आश्चर्यजनक परिणाम होता है कि एक - दो दिन के अन्दर वर्षा हो जाती है।

उससे भी अद्‌भुत बात यह कि जल शिवलिंग - कुण्ड में ही समा जाता है, कहीं बाहर जल की निकासी नहीं है। यह वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है जो ग्रामवासियों द्वारा चमत्कार के रूप में देखा जाता है।

कहा जा सकता है कि बातल का शिवालय गांव के जीवन की सामाजिक धुरी ही नहीं, बल्कि पूरे क्षेत्र में संस्कृति प्रेम की प्रेरणा भी देता है।

संदर्भ - ग्रंथ सूची

1. 'बारहवीं सदी का पराक्रमी वीर: जगदेव परमार' - रामजी लाल लाहौर प्रैस - 1882
2. 'द परमाराज़' प्रीतपाल भाटिया, मुंशी राम मनोहर लाल, नई दिल्ली - 55
3. 'अरव्नूर स्टेट' - दुधाने पंवार, महाराष्ट्र राज्य
4. 'हिमाचल में नाग पूजा' मौलूराम ठाकुर 'हिमप्रस्थ' अप्रैल, 2008
5. 'सुकेत संग्रहिका पांगणा' महामाया मन्दिर कमेटी पांगणा, मंडी - 1999
6. 'देव संस्कृति स्मारिका' - बाड़ादेव (पांच पांडव) मन्दिर स्मारिका समिति बाड़ीधार - 2004
7. 'सिरमौर के श्रीगुल और बिजट देवता' रमेश चन्द्र विपाशा दिसम्बर - 1986
8. 'प्रथम लोक उत्सव' - 1988 ग्रामीण विकास सभा चनावग, सुन्नी (शिमला)
9. 'विरदावली' डॉ. यादव किशोर गौत्तम, कल्याणपुर (अर्की) सोलन
10. 'देवताओं की वंशावलियां' लिखित एवं मौखिक
11. गजेटियर ऑफ शिमला हिल स्टेटस् - 1910
12. गजेटियर ऑफ महासू डिस्ट्रिक्ट - 1910
13. 'बर्बरीक तपोस्थली सिद्धेश्वर धाम' कुणाल शर्मा, दैनिक ट्रिब्यून, फरवरी, 2010
14. 'भव्य श्याम दरबार' पंकज जैन, दैनिक ट्रिब्यून, मई, 2009
15. 'देवता की उत्पत्ति एवं लोक विश्वास' - दयाबंती प्रकाशन, दाड़लाघाट, सोलन 2005 - 171102
16. 'शिवपुराण' - कल्याण प्रैस, गोरखपुर
17. 'किन्नर लोक साहित्य' - डॉ. बंशीराम शर्मा,
18. 'हिस्ट्री ऑफ शिमला हिल्ल - स्टेटस' - जे. हुच्चीसन एण्ड वोगल वाल्यूम - 1, 1910
19. 'गोगा जाहर पीर' नरेन्द्र कौशिक, दैनिक ट्रिब्यून, 28 अगस्त, 2005
20. 'नाथ सम्प्रदाय में गूगा जाहरपीर' संसार चंद प्रभाकर, सोमसी, जुलाई 1987
21. 'गुग्गा काव्य' - बी.आर.भारद्वाज, हिम भारती - मार्च 1972

22. 'बावन वीरों का सरदार नारसिंह वजीर', सोमसी - लेखक का स्वंय का लेख
23. 'हिमाचल प्रदेश का इतिहास, सिरमौर' - मियां गोवर्धन सिंह
24. 'संस्कृति नागपूजा' डॉ. शिवनंदन कपूर, शिक्षा तथा संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली
25. 'भारत' - श्रीपाद डांगे
26. 'अग्नि पुराण' - गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

धारावाला देव संदर्भ –

1. 'रास माला' - फोर्बस
2. 'जयनाद' शिलालेख, मालवा, धार राज्य
3. 'डूंगर गांव' शिलालेख, मालवा राज्य
4. 'श्रवण बलोगा' शिलालेख, मालवा राज्य 1159 ई.
5. 'गदायुद्ध' - कवि रण
6. 'होयसाल शिलालेख' - होयसाल राज्य
7. 'बेलूर तालुक शिलालेख' - 1117 ई.
8. 'हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया' - बी. सी. लॉ
9. 'प्रबन्ध चिन्तामणी' - मेरूतुंग

हिन्दुओं की जीवन शैली तैतींस कोटि (प्रकार) देवी देवताओं की परिकल्पना तथा मान्यता हैं। अनास्थावान विद्वान एवं दार्शनिक भी किसी न किसी रूप में अदृश्य महाशक्ति को मानते हैं, जो रहस्यमय होते हुए भी प्रकृति, जीव तथा अन्तरिक्ष लोकों को संचालित कर रही है। उसे जानने के लिए मनुष्य अपनी बुद्धि–क्षमता के अनुसार प्राकृतिक उपादानों को ही जीव–जगत के अस्तित्व और परिवर्तन को सिद्ध करता रहता है। किन्तु सभी आविष्कार उस सत्ता के आगे असमर्थ, पंगु तथा अव्यस्थित से लगते हैं।

सामाजिक व्यवस्था में देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यदि अंधविश्वास, तर्कहीन कर्मकाण्ड और रूढ़ियों को हटा दिया जाये तो आज की वैज्ञानिक उन्नति के शिखर तक पहुँचने के लिए धार्मिक और सामाजिक–व्यवस्था को ही कारण माना जा सकता है।

धर्म–आधारित व्यवस्था ने समाज में एकता, भाईचारा, पाप का भय तथा परोपकार की भावना को विकसित किया हैं। अतः माना जा सकता है कि जो भी प्राकृतिक शक्तियाँ हमें जीवन प्रदान करती हैं और कुछ न कुछ देती हैं, वे ही साकार ईश्वर या देवता हैं। वैसे भी प्रकृति में क्रिया की प्रतिक्रिया, कर्मों का फल स्वयं सिद्ध है। अतः जिन वीर पुरूषों ने समाज को जीने का रास्ता और सामाजिक–सुरक्षा प्रदान की, वे हमारे देवता बन गये हैं। उनके स्मरण और वन्दन से हम शान्ति, सुख और जीने का उल्लास प्राप्त करते हैं। उनके नाम पर यज्ञ होते हैं जिससे समाज में भाई चारा कायम है।

विमोचन

महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत अमरदेव आंगिरस की पुस्तक का दिनांक 31 मार्च, 2016 को राज भवन, शिमला में विमोचन करते हुए।
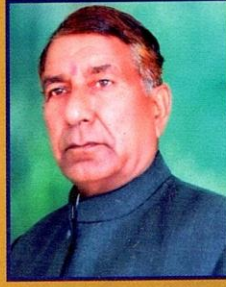
अमर देव आंगिरस

जन्म : हिमाचल के ज़िला सोलन के गांव बातल - अर्की में 1 अगस्त, 1948

शिक्षा : एम. ए. एम. फ़िल्, बी. एड. प्राध्यापक, प्राचार्य (कार्य.)

प्रकाशित रचनाएं : 'राष्ट्र - अस्मिता' (काव्य संकलन), 'देवता की उत्पत्ति एवं लोक - विश्वास' (सांस्कृतिक लेख), 'घाटियों में बिखरी कथाएं' (नीति लोक - कथाएं), हिमाचली लोक नाट्य धाज्जा, करियाला एवं बरलाज, देव कुरगण मंढोड़ एवं कर्णावतार माहूनाग देव (लोक गाथाएं), 'शिवालिक संस्कृति की समृद्ध धरोहर : सोलन जनपद की लोक देव परम्परा', 'हिमाचली परिप्रेक्ष्य में सोलन जनपद' इतिहास एवं संस्कृति

'दाड़लाधार - दर्पण' और 'वीणापाणि' (पत्रिका - सम्पादन)

अन्य : स्कूली शिक्षा के दौरान लेखन प्रारम्भ। ' वीर प्रताप' जालन्धर, 'बाल भारती' नई दिल्ली, 'बाल सखा' दिल्ली में कविताएं तथा कहानियां प्रकाशित। तत्पश्चात देश - प्रदेश की सभी पत्र - पत्रिकाओं में हिमाचली संस्कृति पर निरन्तर रचनाएं प्रकाशित। भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश की पत्रिकाओं सोमसी विपाशा, हिमभारती, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक भास्कर, जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला तथा 'गिरिराज साप्ताहिक' शिमला में 1982 से निरंतर सांस्कृतिक रचनाएं प्रकाशित। प्रदेश की लेखक गोष्ठियों एवं कवि - सम्मेलनों में भाग। आकाशवाणी शिमला से दर्जनों वार्ताएं तथा नाटक प्रसारित। शिक्षा बोर्ड हि. प्र. की प्राथमिक तथा 9वीं, 10वीं कक्षाओं की पाठ्य - पुस्तकों में लेख सम्मिलित। सर्वशिक्षा अभियान में स्रोत - व्यक्ति।

सम्प्रति : हिमाचली - संस्कृति पर लेखन

सम्पर्क : अंगिरा भवन, समीप फलोद्यान, दाड़लाघाट, सोलन (हि. प्र.) 171102
मो. 94181 - 65573, 98051 - 16573

E-mail : amardevangiras@gmail.com

मूल्य - रु.325/-